अगस्त्य संहिता

रामोपासना का प्राचीनतम आगमशास्त्र

सम्पादक

पं. भवनाथ झा

पंचाङ्गुलि प्रदेशेतु वृत्ताकारं यथा लिखेत् सर्वदुष्टोपशमनं सर्वोपद्रवनाशनम् ७८ आयुरारोग्य
मैश्वर्यं पुत्रपौत्रप्रवर्द्धनम् सर्वान्कामानवाप्नोति विष्णुलोके स गच्छति ७९ इत्यगस्त्यसंहिता
यां परमरहस्ये हनुमन्मंत्रे श्रीरामकवचोद्धारकथनं नाम द्वात्रिंशोध्यायः ।। ३२ श्लोकसंख्या २०००
लिष्यतं लाला सीताराम श्री चित्रकूटस्थाने श्रीरामजी रामघाट मंदाकिनी मे सुरनीतरे संगमे ।।
पुस्तकं श्री श्री श्री श्री महंत आचार्य वलभद्रदासजी की वैसाख वदि १२ संवत् १९०२ रामः रामः रामः

महावीर मन्दिर प्रकाशन

'अगस्त्य-संहिता' वैष्णवागम पांचरात्र साहित्य का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें रामोपासना का विस्तारपूर्वक शास्त्रीय विवेचन किया गया है। यद्यपि 1898 ई. में लखनऊ से देवनागरी लिपि में तथा 1909 ई. में कोलकाता से बंगला अनुवाद के साथ बंगला लिपि में इसका प्रकाशन हुआ है, किन्तु वर्तमान में यह ग्रन्थ सर्वथा अनुपलब्ध है।

सम्पूर्णानन्द विश्वविद्यालय से प्राप्त अनेक पाण्डुलिपियों तथा अन्य अनेक आधार-ग्रन्थों का उपयोग करते हुए महावीर मन्दिर, पटना के प्रकाशन विभाग के द्वारा यह 'अगस्त्य-संहिता' हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशित की जा रही है। इसके संपादक पण्डित भवनाथ झा महावीर मन्दिर प्रकाशन के प्रभारी हैं। पाण्डुलिपि विज्ञान के गम्भीर विद्वान् तथा मिथिलाक्षर एवं बंगला लिपि के ज्ञाता भवनाथ झा ने स्वयं पाण्डुलिपियों तथा आधार-ग्रन्थों का अवलोकन कर इसका सम्पादन किया है।

अवकाशप्राप्त आइ. पी. एस. अधिकारी, कुशल प्रशासक, इतिहास तथा संस्कृत के गम्भीर अध्येता विद्वान्, बिहार राज्य धार्मिक न्यास पर्षद् के प्रशासक तथा महावीर मन्दिर की न्यास समिति के सचिव आचार्य किशोर कुणाल ने इस पुस्तक का आमुख लिखकर इस प्रकाशन की उपयोगिता पर प्रकाश डाला है।

महावीर मन्दिर प्रकाशन माला का 25वाँ पुष्प

अगस्त्य-संहिता

रामोपासना का प्राचीनतम वैष्णवागमशास्त्रीय ग्रन्थ

सम्पादक

पं. भवनाथ झा

आमुख लेखन

आचार्य किशोर कुणाल

महावीर मन्दिर प्रकाशन

प्रकाशक :

महावीर-मन्दिर-प्रकाशन

पाणिनि परिसर, बुद्धमार्ग, पटना-800 001

प्रथम संस्करण

श्रीकृष्णजन्माष्टमी, संवत् 2066 (2009 ई०)

मूल्य : पेपरबैक – 50 रुपये

पुस्तकालय संस्करण– 200 रुपये

प्राप्तिस्थान :

धर्मग्रन्थ विक्रय केन्द्र,

महावीर मन्दिर, पटना

मुद्रक :

प्रकाश ऑफसेट, धरहरा कोठी, पटना

आमुख

– आचार्य किशोर कुणाल

'अगस्त्य-संहिता' रामोपासना का महत्त्वपूर्ण एवं प्राचीन वैष्णवागम-शास्त्रीय ग्रन्थ है। इसका उल्लेख हेमाद्रि के 'चतुर्वर्ग-चिन्तामणि' से लेकर आधुनिक काल तक के शास्त्रीय ग्रन्थों में हुआ है। हेमाद्रि (13वीं शती) ने 'चतुर्वर्ग-चिन्तामणि' में; माधवाचार्य (14वीं शती) ने 'कालमाधव' में; मिथिला के महेश ठाकुर (16वीं शती) ने 'तिथितत्त्वचिन्तामणि' में तथा कमलाकर भट्ट (17वीं शती) ने 'निर्णयसिन्धु' में रामनवमी-तिथि के निर्धारण के प्रसंग में इसके सुसंगत श्लोकों को उद्धृत किया है। मिथिला के प्रसिद्ध आगमाचार्य देवनाथ ठाकुर ने 1564 ई. में 'मन्त्रकौमुदी' की रचना की, जिसमें उन्होंने पाँच स्थलों पर आगमशास्त्र के विभिन्न सिद्धान्तों और विधियों के प्रमाण के रूप में 'अगस्त्य-संहिता' को उद्धृत किया है। हेमाद्रि के 'चतुर्वर्ग-चिन्तामणि' में इसके कम से कम 32 श्लोक उद्धृत किये गये हैं।

किन्तु आधुनिक काल में 'अगस्त्य-संहिता' की सर्वाधिक चर्चा रामानन्दाचार्य के चरित-लेखन के सन्दर्भ में हुई है। हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने इस ग्रन्थ को उद्धृत करते हुए रामानन्दाचार्य का काल प्रामाणिक स्रोत के आधार पर निर्धारित करने का दावा किया है। किन्तु शोध के उपरान्त पाया गया कि मूल 'अगस्त्य-संहिता में रामानन्दाचार्य की कोई चर्चा नहीं है। यह चर्चा हो भी नहीं सकती है; क्योंकि 'अगस्त्य-संहिता' रामानन्दाचार्य से बहुत पहले की शास्त्रीय रचना है।

'दलित-देवो भव' पुस्तक में रामानन्दाचार्य की जीवनी लिखने के सन्दर्भ में मूल 'अगस्त्य संहिता' के अन्वेषण की आवश्यकता पड़ी। अनेक विद्वानों द्वारा लिखी हुई रामानन्द-जीवनी में यह पढ़ने को मिला था कि 'अगस्त्य-संहिता' के आधार पर रामानन्दाचार्य का जन्म सन् 1299 ई० में हुआ था। इसके समर्थन में 'अगस्त्य-संहिता' के ये श्लोक भी उद्धृत किये जाते रहे हैं-

खं⁰नभो⁰वेद⁴वेद⁴प्रमिते वर्षे गते कलौ।
माघकृष्णस्य सप्तम्यां शुभधर्मप्रवर्तके।।
सप्तदण्डोद्गते सूर्ये सिद्धयोगयुजि प्रभुः।
नक्षत्रे त्वाष्ट्रदैवत्ये कुम्भलग्ने शुभग्रहे।।
आविर्भूतो महायोगी द्वितीय इव भास्करः।
रामानन्द इति ख्यातो लोकोद्धरणकारणः।।

अर्थात् कलियुग के 4400 वर्ष बीत जाने पर माघ कृष्ण पक्ष की सप्तमी तिथि के शुभ दिन में सूर्य भगवान् के सात दण्ड चढ़ने पर सिद्ध योग-युक्त चित्रा नक्षत्र तथा कुम्भ लग्न और सभी ग्रहों के शुभ स्थान में होने पर दूसरे सूर्य के समान महायोगी रामानन्द का आविर्भाव हुआ, जो लोगों का उद्धार करनेवाले थे।

पूरे रामानन्द सम्प्रदाय में भी स्वामीजी का जन्म इसी दिन माना जाता है। अतः इसकी प्रामाणिकता में सन्देह का कोई अवकाश नहीं था। किन्तु बहुत-से समीक्षकों की यह टिप्पणी जब पढ़ने को मिलती थी कि 1299 ई० में जन्मे रामानन्दचार्य कबीर और रैदास के गुरु कैसे हो सकते थे, जो क्रमशः 1518 और 1527 ई० तक जीवित रहे। इस तर्क में भी दम दीखता था। पूरी मध्यकालीन परम्परा कबीर और रैदास को रामानन्द का शिष्य मानती रही है; अतः इन दो 'सत्यों' के बीच सामंजस्य बैठाने के लिए मूल 'अगस्त्य-संहिता' का अन्वेषण प्रारम्भ हुआ और प्रस्तुत प्रकाशन का बीज-वपन हुआ।

इस मूल 'अगस्त्य-संहिता' में 32 अध्याय हैं और पुष्पिका में ग्रन्थ-समाप्ति की घोषणा है। किन्तु किसी-किसी पाण्डुलिपि में 33वाँ अध्याय भी है, जिसमें सभी देवों की एकत्र की पूजा की पद्धति है। अयोध्या के प्रसिद्ध सन्त बलभद्र दास ने 'वैष्णवमताब्ज-भास्कर' एवं 'रामार्चन-पद्धति' की प्रस्तावना 'प्रस्तुत प्रसंग' में अगस्त्य-संहिता की चर्चा की है और इसमें 33 अध्याय बतलाये हैं। हैन्स बेकर की पुस्तक 'अयोध्या' में भी 33वें अध्याय का उल्लेख है। किन्तु अधिकतर प्रकाशित पुस्तकों एवं पाण्डुलिपियों में यह 32 अध्याओं का ही ग्रन्थ बतलाया गया है; अतः उतने को ही मूल ग्रन्थ में प्रकाशित किया गया है। पाठकों की जिज्ञासा-शान्ति के लिए 33वें सर्ग के कुछ श्लोक, जो हैन्स बेकर की पुस्तक 'अयोध्या' में उद्धृत हैं, भूमिका में संकलित किये गये हैं।

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में 'अगस्त्य-संहिता' की अनेक पूर्ण-अपूर्ण पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हैं; उनमें से एक पाण्डुलिपि 'अगस्त्य-संहिता' के 41वें अध्याय की बतलायी गयी है; स्पष्टत: यह किसी परवर्ती कवि की रचना है।

इस 'अगस्त्य-संहिता' में किसी विद्वान् ने 5 अध्यायों का प्रक्षेप जोड़ा है, जिसे 'अगस्त्य-संहिता' के उत्तर-खण्ड में 131वें से 135वें अध्याय का बतलाया गया है। इसे पहले भविष्योत्तर-खण्ड का बतलाया गया था। किन्तु 'अगस्त्य-संहिता' में भविष्य या भविष्योत्तर-खण्ड है या नहीं, यह विवेच्य है। वस्तुत: यह ग्रन्थ खण्डों में विभक्त है ही नहीं। इसमें 32 या अधिकतम 33 अध्याय हैं। फिर 131 से 135 अध्याय कहाँ से टपक पड़े? और बीच के अध्याय कहाँ लुप्त हो गये? बलभद्र दास ने लिखा है कि जिसने पाँच अध्यायों का यह क्षेपक जोड़ा है, उसने 'अगस्त्य-संहिता' का दर्शन भी नहीं किया था। मैं भी इससे सहमत हूँ। उसे इतना ही ज्ञात था कि यह संहिता अगस्त्य-सुतीक्ष्ण संवाद के रूप में है; क्योंकि 'अगस्त्य-संहिता' को 'अगस्त्य-सुतीक्ष्ण संवाद' के नाम से भी जाना जाता था। सचमुच, प्रक्षेपक को 'अगस्त्य-संहिता' का दर्शन हुआ होता, तो वह प्रक्षिप्त अंश को 33वें अध्याय से प्रारम्भ करता!

किन्तु इस अंश का प्रक्षेपक कौन है? क्या यह गुजरात-राजस्थान की कारयित्री प्रतिमा की परिणति है? या पं० रामनारायण दास हैं, जिन्होंने 1898 ई० में 'अगस्त्य-संहिता' का प्रकाशन लखनऊ से किया था और 1906 ई० में 'रामानन्द जन्मोत्सव कथा' के नाम से पुस्तक का सम्पादन किया था, जिसमें 'वैश्वानर संहिता' और 'श्रीरामानन्दभवोत्साहष्टकम्' भी समाविष्ट थे। इस पुस्तक में पण्डित रामनारायण दास ने लिखा था कि यह 'रामानन्दजन्मोत्सव कथा' 'अगस्त्य-संहिता' के भविष्य खण्ड में 131-135 अध्यायों में वर्णित है। इस पुस्तक को डाकोर, गुजरात के वैष्णवरामदासजी ने मुंबई से 1906 ई. में छपवाया। प्रसिद्ध इतिहासकार डी.आर. भण्डारकार ने अपनी पुस्तक 'वैष्णविज्म, शैविज्म एण्ड माइनर रिलीजिअस सिस्टम्स' में पहली बार यह लिखा कि उन्हें रामानन्दाचार्य के जन्म की तिथि प्रामाणिक स्रोत से प्राप्त हो गयी है और इस स्रोत का नाम 'अगस्त्य-संहिता' बतलाया। तबसे इस देश के अधिकतर लेखकों एवं समीक्षकों ने मूल स्रोत की जाँच किये बिना रामानन्दाचार्य का जीवन-वृत्त 'अगस्त्य-संहिता' के फर्जी अंश के आधार पर प्रस्तुत किया है। किन्तु पं. रामनारायण दास इस फर्जी अंश के प्रक्षेपक नहीं हो सकते; क्योंकि उन्हें यदि यह अंश जोड़ना होता, तो 1898 ई. में ही इसका सम्पादन करते समय जोड़ देते। किन्तु 1898 ई. में उनके द्वारा सम्पादित 'अगस्त्य-संहिता' में कोई प्रक्षेप

नहीं है। 1903 ई. में जब अयोध्या के ही दूसरे प्रसिद्ध सन्त रूपकलाजी ने नाभादास के 'भक्तमाल' का सम्पादन कर उसपर तिलक टीका लिखी, जब उन्होंने इस तथ्य का उल्लेख किया कि रामानन्दाचार्य की जीवनी 'अगस्त्य-संहिता' के भविष्योत्तर खण्ड में मिलती है और यह वृत्तान्त उन्होंने काशी की कुंजगली में हजारीलाल गणेश प्रसाद के घर में पढ़ा था और यह पोथी 1878 ई. में सूर्यप्रभाकर छापखाने में छपी थी। रूपकलाजी ने रामानन्दाचार्य की जीवनी में जो श्लोक उद्धृत किये गये हैं, वे 'अगस्त्य-संहिता' के प्रक्षिप्त अंश के ही हैं और उसका हिन्दी अनुवाद भी श्री सीताशरण महाराज ने रामरसरंगमणिजी द्वारा कराकर 'श्रीरामानन्द-यशावली' के नाम से छपवाया था। अत: 'अगस्त्य-संहिता' में यह प्रक्षेप 1876 ई. में जुड़ चुका था। अतः इसके प्रक्षेपक रामनारायण दास नहीं हो सकते।

सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन करने पर पता चलता है कि 'रामानन्दजन्मोत्सव कथा' (अगस्त्य-संहिता के प्रक्षिप्त अंश), 'वैश्वानर संहिता' और 'श्रीरामानन्दभवोत्साष्टकम्' के लेखक एक ही विद्वान् प्रतीत होते हैं; क्योंकि तीनों की भाषा एवं भाव में साम्य है। तीनों रचनाओं में रामानन्दाचार्य के प्रति असीम श्रद्धा का भाव है और तीनों रचनाएँ एक ही पुस्तक में छपी हैं। पहली रचना यानी 'अगस्त्य-संहिता' का तथाकथित भविष्य खण्ड 1878 ई. में छप चुका था और 'रामानन्दजन्मोत्साहाष्टकम्' की रचना 1880 ई. (1937 वि) में हुई थी, यह इस अष्टक के 10वें श्लोक में उल्लिखित है। इस श्लोक में रचयिता का नाम भी पण्डित श्रीरामचरण दिया हुआ है। इसमें भी रामानन्दाचार्य के जन्म की वही तिथि दी हुई है; बल्कि इसमें संवत् 1356 वि. मास माघ, पक्ष कृष्ण, तिथि सप्तमी के अलावे भावोत्साह में दिन भी गुरुवार दिया गया है, 'अगस्त्य-संहिता' के प्रक्षिप्त अंश में वर्ष, मास, पक्ष और तिथि का उल्लेख किया गया है; किन्तु दिवस का उल्लेख नहीं है। अष्टक में दिवस भी है और इसकी गणना करने से आचार्य की जन्म-तिथि गलत निकलती है। किन्तु उपर्युक्त सभी तथ्यों के आलोक में यह प्रबल समानता है कि 1880 ई. 'श्रीरामानन्द-भवोत्साहाष्टकम्' के रचनाकार पण्डित श्री रामचरण ने ही अगस्त्य-संहिता में भविष्य-खण्ड के नाम पर पाँच अध्याय 1878 ई. में या इसके पूर्व जोड़े? अब पण्डित श्रीरामचरण कौन हैं? पण्डित श्रीरामचरण नामक कोई विद्वान् अभी ज्ञात नहीं हुआ हैं, किन्तु अयोध्या में जानकीघाट की गुरु-परम्परा में रामचरण दास नामक एक सन्त मिलते हैं। इनके गुरु का नाम रघुनाथ प्रसाद था, जो जानकीघाट के महन्त थे। सं. 1888 वि. (1531 ई.) में माघ शुक्ल नवमी को ये रैवासे से अपने गुरु के पास अयोध्या आये थे।

रामचरणजी द्वारा विरचित ग्रन्थों के नाम 'सीताराम-नवरत्न-संग्रह', 'अष्ट-भाग', 'रस-मालिका' आदि हैं। ये रसिक सम्प्रदाय के महात्मा थे और अयोध्या में रामभक्ति में श्रृंगार का प्रचार करनेवाले प्रथम सन्त थे। अत: यह प्रश्न उठता है कि क्या रसिक सम्प्रदाय के महात्मा 'श्रीरामानन्द-जन्मोत्सव-कथा' और 'श्रीरामानन्दभवोत्साहाष्टकम्' जैसे ग्रन्थों का रचनाकार हो सकते हैं? क्या महन्त रामचरण दास 1880 ई. तक जीवित थे? इन प्रश्नों के उत्तर तथा अन्य किसी पण्डित श्रीरामचरण की पहचान पर इसका उत्तर निर्भर करता है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट है कि 'अगस्त्य-संहिता' रामोपासना का प्राचीन ग्रन्थ है; जबकि 'अगस्त्य-संहिता' के तथाकथित भविष्य-खण्ड के अध्याय 131-35 में वर्णित रामानन्द जन्मोत्सव-कथा एक प्रक्षिप्त अंश है, जिसमें रामानन्दाचार्य, सन्त कबीर एवं सन्त रैदास की जन्मतिथियाँ गलत रूप से प्रस्तुत हैं। मूल 'अगस्त्य-संहिता' रामोपासना का ऐसा प्रामाणिक धर्मग्रन्थ है, जिसको 12वीं सदी से लगातार इस देश के धर्मशास्त्रियों ने रामार्चना, विशेषकर रामनवमी के सन्दर्भ में उद्धृत किया है। प्राचीन काल में 'रामतापनीयोपनिषद्', बुधकौशिक-विरचित 'रामरक्षास्तोत्र' एवं 'अगस्त्य-संहिता' की गणना रामोपासना के प्रमुख ग्रन्थों में की जाती है।

इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'अगस्त्य-संहिता' का सम्पादन एवं हिन्दी-अनुवाद महावीर मन्दिर के मूर्द्धन्य विद्वान् पं. भवनाथ झा ने किया है। संस्कृत भाषा, साहित्य, व्याकरण एवं अन्य शास्त्रों पर भवनाथजी की जो पकड़ है, वह प्रशंसनीय है। पूरे देश में इनकी टक्कर के विद्वान् बहुत कम मिलेंगे। अत: सम्पादन एवं अनुवाद की प्रामाणिकता में कोई संशय नहीं रह जाता। महावीर मन्दिर प्रकाशन महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन बहुत कम मूल्य पर करता रहा है, उसी कड़ी में 'अगस्त्य-संहिता' का यह प्रकाशन आपके समक्ष प्रस्तुत है। आशा है कि इसको पढ़ने के बाद पाठक अब इस भ्रान्ति में नहीं पड़ेंगे कि रामानन्दाचार्य का जन्म 1299 ई. में हुआ था। मैंने 'दलित-देवो भव' में संक्षेप में और शीघ्र प्रकाश्य पुस्तक 'युग प्रवर्तक रामानन्द' में यह सिद्ध किया है कि रामानन्दाचार्य 1470 ई. तक अवश्य जीवित थे; अत: यदि उनका जन्म वर्ष 1356 वि.सं. नहीं मानकर 1356 ई. मान लिया जाये, तो उनका काल 1356 से 1470 ई. होगा और तब कबीर एवं रैदास को उनके शिष्य मानने की जो सर्वसम्मत मध्यकालीन परम्परा रही है, उसमें उत्पन्न आशंकाओं का निराकरण हो जायेगा।

पटना
श्रीकृष्णजन्माष्टमी, 2066 वि.

किशोर कुणाल

अगा॰
१

श्रीमतेरामानुजायनमः अगस्त्योनाम विप्रर्षिः सन्नमोगौतमीतटे कदाचिद्दंडकारण्ये सुतीक्ष्णास्याश्रमं ययौ १ प्रत्युद्गम मतंभक्त्यागंधपुष्पाक्षतोदकैः पाद्यार्घ्याद्यर्हणांचक्रे तस्मैब्रह्मविदेमुनिः २ सुतीक्ष्णस्तंप्रणम्याहसुखासीनंतपोनिधिं श्री मदागमनेनैवजीवितंसफलंमम ३ अद्यजन्मसहस्रेषुतपः फलतिसंचितम् कामक्रोधादिभिर्भूयो भूयोहंपीडितोमुने। ४ नद्रास्यंसम्पगिष्टापिक्रतुभिर्बहुदक्षिणैः सत्पात्रेसर्वदानानिदत्वातुमुनिसत्तम ५ भवाब्धेस्तरणोपायंतपस्तत्वासु दुष्करं किंकरिष्याम्यहंतातकथयस्वामीतितद्वद ६ इत्युक्तः सोब्रवीत्तेनकुंभभूर्विगतस्पृहः स्मरणंविचार्यतत्तौवार्यपर्व्वणाम् निपुंगवः ७ अगस्त्यउवाच अस्तिवस्यामितेसर्वंरहस्यंरघुभध्वजः प्रसन्नतपादपद्मपूर्वंपार्वतीकृपयात्कदित् ८ कदाचित्मा र्वतीप्राहभर्त्तारंभक्तवत्सलं कथंमेदेवनिस्तारोभवाब्धेस्तरणंभवेत् भवाब्धौमोहिताःसर्वेमद्गतिंप्राप्नुवंतिनो ९ ईश्वरउवाच॥ कामक्रोधादिभिर्दोषैर्दुष्टास्तत्रपुनःपुनः उत्पद्यंतेविलीयंतेपुनर्मामोहितास्त्वया १० गोरवादिषुयच्चान्येपुनःसंसारिणोभुवि। कर्मशेषात्प्रजायंतेपशुवंधवधिरादयः ११ कृमिकीटादयोभूत्वापुनःसंसारिणोभुवि तस्मादुपहताःकेचिच्चौरव्याघ्रादिभि र्हताः १२ प्रविशंतिजलाग्नौवादेशाद्देशंव्रजंतिहि परस्त्रीधनहंतारस्तापयंतीसतःसदा देवब्राह्मणवित्तैस्तुयेषांजीवनमन्वहं राजसाःतामसाश्चैवहर्त्तारोधनजीविनः पुत्रदारादिभिर्युक्तादुःखावर्त्तेभ्रमंतहो कलौप्रायेणसर्वेपिराजसातामसास्तथा १५

राम
१

पाण्डुलिपि 'क' का प्रथम पृष्ठ

ग
अ।
५०

गृहाद्यंजेषुविन्यसेत् अनुलोमविलोमाभ्यांप्राद्राक्षिणपक्रमेणाच ७१ राघवादीन्निनामानिनम स्कारेणयोजयेत् मेशिरःपात्विती चस्यात्सर्वत्तोवाक्ययोजना ७२ साध्याख्यसंयुतांषष्ठांस्वहेसेका दशेगृहे स्वकामशक्तिवाग्वर्णानारसिंहमतःपरं ७३ लक्ष्मीयशांकुशाणांनिवाराहंफट्स्वरूपकं स्वा हेतिरामभद्रस्यद्वादशाक्षरमीरितं ७४ सौवर्णेराजतेपात्रेभूर्जेवासम्यगालिखेत् अथवाताम्रपत्रे चगुलिकीकृत्यधारयेत् ७५ यावज्जीवंतुसौवर्णेरौप्येविंशतिवर्षकं भूर्जेद्वादशवर्षाणितदर्धंताम्र पत्रके ७६ एवंलिख्यविशेषेणयंत्रशक्तिप्रतिष्ठिता एतांरामवलोपेतांमित्यादिश्लोकमद्भुतं ७७ यंत्रांगुलिःप्रदेशेतुवृत्ताकारंयथालिखेत् सर्वदुःखोपशमनंसर्वोपद्रवनाशनंम् ७८ आयुरारोग्य मैश्वर्यंपुत्रपौत्रप्रवर्द्धनंम् सर्वान्कामानवाप्नोतिविष्णुलोकेसगच्छति ७९ इत्यगस्त्यसंहिता यां ... मरहस्येहनुमत्प्रोक्तेश्रीरामकवचोद्धारकथनंनामद्वाविंशोध्यायः॥ ३२ श्लोकसंख्या २०००॰ लिख्यतंलालासीताराम श्रीचित्रकूटअस्थानेश्रीरामजीरामघाटमंदाकिनीयेसुरनीतटेसंगमे॥ पुस्तकेश्रीश्रीश्रीश्रीमहंतआचार्यवलभद्रदासजीकीवैसाषवदि १२ संवत् १९०२ रामःरामःरामः

राम
५०

प्रस्तावना

भारतीय परम्परा में वैदिक पद्धति यज्ञ प्रधान है, जिसमें देवताओं के निमित्त अग्नि में आहुति देकर उन देवों की उपासना होती है। इन यज्ञों का विवरण हमें ब्राह्मण-ग्रन्थों एवं श्रौत-सूत्रों में मिलता है। परवर्ती काल में पूजन की एक दूसरी परम्परा आरम्भ हुई, जिसमें देवताओं की पूजा अतिथि-पूजा की शैली में होने लगी। यह उपासना की आगम-पद्धति कहलायी। 'बौधायन-गृह्यसूत्र' में दुर्गापूजन, नवग्रहपूजन आदि की जो पद्धति है, वह आगम की पद्धति है, जिसमें आवाहन, पाद्य, अर्घ्य, पुष्पाञ्जलि आदि विधियाँ हैं। 'महाभारत' में भी इस पद्धति का उल्लेख उपलब्ध होता है, अतः इस आगम पद्धति को कम से कम ईशा पूर्व द्वितीय शताब्दी तक प्राचीन माना जा सकता है।

प्राचीन काल में इस आगम-पद्धति की पाँच शाखाओं का उल्लेख विभिन्न ग्रन्थों में मिलता है। ये शाखायें थीं- सौर, गाणपत्य, शैव, शाक्त एवं पाञ्चरात्र। इनमें पाञ्चरात्र पद्धति वैष्णव उपासना पद्धति है, जिसके विकास में दक्षिण के आलवार वैष्णव सन्तों का पर्याप्त योगदान रहा है।

सभी आगमों की परम्परा की एक मुख्य विशेषता रही है कि इसमें सामाजिक समानता का पर्याप्त पोषण हुआ है। वैदिक उपासना पद्धति में आयी जटिलता एवं कट्टरता के विरुद्ध आगम की परम्परा सामाजिक समरसता, लौकिकता एवं सरलता के कारण समाज में व्यापक प्रसिद्धि पा सकी। अतिथि-पूजन की विधि किसी भी भारतीय के लिए प्रायः न तो जटिल प्रक्रिया थी और न ही अबोधगम्य थी। आगम पद्धति इस सरलता का पोषक रही और जन साधारण ने अतिथि की तरह देवपूजन कर देवता को अधिक सन्निकट पाया। वैदिक ऋचाओं की तरह इसके मन्त्रों के उच्चारण में पाण्डित्य और संस्कृत व्याकरण के ज्ञान की अपेक्षा थी, न ही मध्यकाल में भी कोई जातीय प्रतिबन्ध था।

जयन्तभट्ट (नवम शती उत्तरार्द्ध) ने 'आगम-डम्बर' प्रहसन में पाञ्चरात्र के सम्बन्ध में जो लिखा है, उससे यह अर्थ निकलता है कि इस परम्परा के उपासक ब्राह्मणेतर थे और उन्हें समाज में ब्राह्मण के समान सम्मान प्राप्त था। वे पाञ्चरात्र आगम के ग्रन्थों का पारायण करते थे और उनके प्रति वैदिक संहिताओं के समान आदर की भावना रखते थे। जिस प्रकार वैदिक संहिताओं में एक भी शब्द का हेरफेर या आगे-पीछे करना अक्षम्य माना गया है, उसी प्रकार पाञ्चरात्र के ग्रन्थों के लिए भी वे ध्यान रखते थे। जयन्त भट्ट की इस रचना में आगम के विभिन्न सम्प्रदायों तथा वैदिक सम्प्रदाय की विशेषताओं का हास्यपरक वर्णन किया गया है। सभी सम्प्रदाय के अनुयायी आपसे में लड़ते हैं, नोंकझोंक करते है, अपने वर्चस्व के लिए दूसरे सम्प्रदाय पर छींटाकशी करते हैं, किन्तु अन्त में जयन्त भट्ट ने अपने न्यायशास्त्र के पाण्डित्य का उपयोग करते हुए सबके बीच समन्वय करने का प्रयास किया है। इसी क्रम में आगम-डम्बर का प्रसिद्ध श्लोक है–

एकः शिवः पशुपतिः कपिलोऽथ विष्णुः
संकर्षणो जिनमुनिः सुगतो मनुर्वा।
संज्ञाः परं पृथगिमास्तनवोऽपि काम-
मव्याकृते तु परमात्मनि नास्ति कोऽपि भेदः।। 4।57

इस 'आगम-डम्बर' के चतुर्थ अंक में वैदिक ऋत्विक् बेचैन होकर कहते हैं कि कानों में बर्छी की तरह मुझे यह बात लग रही है।

ऋत्विक्– किं क्रियते? किन्त्विदमधिकं मे कर्णशल्यम्।

उपाध्यायः– किमिव?

ऋत्विक्– यदमी पाञ्चरात्रिकाः भागवताः ब्राह्मणवद् व्यवहरन्ति। ब्राह्मणसमाजमनुप्रविश्य निर्विशङ्कमभिवादय इति जल्पन्ते। विशिष्टस्वरवर्णानुपूर्वीकृतया वेदपाठमनुसरन्त इव पञ्चरात्रग्रन्थमधीयते। ब्राह्मणाः स्म इत्यात्मानं व्यपदिशन्ति व्यपदेशयन्ति च। शैवादयस्तु न चातुर्वर्ण्यमध्यपतिताः, श्रुतिस्मृतिविहितमाश्रममवजहतः शासनान्तरपरिग्रहेणान्यथा वर्तन्ते। एते पुनराजन्मन आसन्ततेः ब्राह्मणा एव वयमिति ब्रुवाणास्तथैव चातुराश्रम्यमनुकुर्वन्तीति महद् दुःखम्।

अर्थात् ये पांचरात्रवाले वैष्णव ब्राह्मण के समान व्यवहार करते हैं। ब्राह्मणों के समाज के बीच जाकर कहते हैं कि 'मुझे विना किसी भय के अभिवादन करो। विशेष प्रकार से स्वरों के साथ वर्णों को यथास्थान रखते हुए पाञ्चरात्र के ग्रन्थों का

पाठ करते हैं, जैसे वेदपाठ का अनुसरण कर रहे हों। हमलोग ब्राह्मण हैं' यह अपने बारे में उपदेश करते हैं और दूसरे से भी कराते हैं। शैव आदि आगमवाले तो खैर चातुर्वर्ण्य के भीतर आते ही नहीं, वेद और स्मृतियों में वर्णित आश्रम का त्याग कर अपने बनाये हुए दूसरे ही नियमों का पालन करते हैं। किन्तु ये (पांचरात्रवाले) कहते हैं कि मैं जन्म से ब्राह्मण हूँ तथा मेरी सन्तति भी ब्राह्मण रहेंगे। इस प्रकार कहते हुए उसी रूप में बोलते हुए चारों आश्रमों का अनुकरण करते हैं।"

एक ऋत्विक् का आक्रोशपूर्ण कथन होने के कारण इसकी शैली व्यंग्यात्मक है, किन्तु इससे पांचरात्र आगम में ब्राह्मणेतर साधकों का प्रवेश तथा समाज में उनका सम्मान स्पष्ट प्रतीत है। इसीलिए वे कट्टर वैदिकों के लिए कर्णशल्य बने हुए हैं।

जयन्त भट्ट का यह कथन इसलिए भी ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसमें पांचरात्र आगम के अनेक ग्रन्थों का भी संकेत किया गया है, जिनका पाठ वे अनुयायी किया करते थे।

बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना से प्रकाशित 'पांचरात्रागम' ग्रन्थ में डा. राघवप्रसाद चौधरी ने 'नारायण-संहिता' का हवाला देते हुए पांचरात्र की तीन प्रकार की संहिताओं की सूची दी है। इस सूची में 21 सात्विक संहिताएँ, 33 राजस संहिताएँ तथा 33 तामस संहिताएँ सम्मिलित हैं। इनके अतिरिक्त अन्य संहिताओं का भी संकेत है।

आधुनिक विद्वानों में डा. एच डेनियल स्मिथ ने 'वैष्णव आइकोनोग्राफी' नामक पुस्तक में कुल 35 संहिता-ग्रन्थों की सूची दी है, जिनका संकलन उन्होंने किया था। ये संहिताएँ निम्नलिखित हैं–

(1) अगस्त्य-संहिता (2) अनिरुद्ध-संहिता (3) अहिर्बुध्न्य-संहिता
(4) ईश्वर-संहिता (5) कपिंजल-संहिता (6) काश्यप-संहिता
(7) गरुड़-संहिता (8) जयाख्य-संहिता (9) नारदीय-संहिता
(10) परम-संहिता (11) पराशर-संहिता (12) पाद्म-संहिता
(13) पारमेश्वर-संहिता (14) पुरुषोत्तम-संहिता (15) पौष्कर-संहिता
(16) बृहद् ब्रह्म-संहिता (17) भार्गव-तन्त्र (18) मार्कण्डेय-संहिता
(19) मार्कण्डेय-संहिता 2 (20) लक्ष्मी-संहिता (21) वायु-संहिता
(22) वाशिष्ठ-संहिता (23) विश्वामित्र-संहिता (24) विष्णुतत्त्व-संहिता
(25) विष्णुतन्त्र-संहिता (26) विष्णुतिलक-संहिता (27) विष्णु-संहिता
(28) विष्वक्सेन-संहिता (29) विहगेन्द्र-संहिता (30) शाण्डिल्य-संहिता
(31) शेष-संहिता (32) श्रीप्रश्न-संहिता (33) सनत्कुमार-संहिता
(34) सात्वत-संहिता 2 (35) हयशीर्ष-संहिता

इन संहिता-ग्रन्थों में 'अगस्त्य-संहिता' एवं ईश्वर-संहिता के दो पाठों का उल्लेख डा. स्मिथ ने किया है।

अगस्त्य-संहिता का प्राचीन ग्रन्थों में उल्लेख

धर्मशास्त्र की परम्परा में कई निबन्धकारों ने इस 'अगस्त्य-संहिता' का उल्लेख किया है। हेमाद्रि (1260-1270 ई0) ने भी चतुर्वर्ग-चिन्तामणि के 'व्रत प्रकरण' में इसका उल्लेख किया है, जिसे कमलाकर भट्ट ने 'निर्णय-सिन्धु' में **'हेमाद्रौ अगस्तिसंहितायां'** कहकर उद्धृत किया है। हेमाद्रि का काल ज्ञात है। ये देवगिरि के यादववंशीय राजा महादेव (1260-70 ई.) के सर्वश्रीकरण-प्रभु, यानी सभी अभिलेखों के प्रभारी थे। महादेव के शासनकाल में ही 'चतुर्वर्ग-चिन्तामणि' की रचना हुई थी।

'चतुर्वर्ग-चिन्तामणि' के श्राद्धकाण्ड के आरम्भ में उन्होंने अपने आश्रयदाता नृपति का वर्णन विस्तार से किया है, जिसके आधार पर ग्रन्थ के सम्पादक प्रो. विश्वनाथ शास्त्री ने हेमाद्रि का पद्यबद्ध परिचय इस प्रकार दिया है–

विध्वस्ताखिलवैरिणा किल महादेवस्य पृथ्वीपतेः
राज्यक्षीरसमुद्रवर्द्धनशशी हेमाद्रिसूरिः परः।
येन श्रीकरणाधिपत्यपदवीमासाद्य विद्यामपि
न्यस्ता श्रीश्च सरस्वती च विदुषां गेहेषु देहेषु च।।10।।

कमलाकर भट्ट कृत 'निर्णयसिन्धु' में 'चतुर्वर्ग-चिन्तामणि' से उद्धृत श्लोक परिशिष्ट 1 में ग्रन्थान्त में एकत्रित हैं। ये श्लोक 'अगस्त्य-संहिता' के विभिन्न अध्यायों में विद्यमान हैं। जिनका संदर्भ-संकेत भी वहीं दिया गया है।

'कालमाधव' माधवाचार्य की प्रामाणिक रचना मानी जाती है। इसका रचना-काल 1336-1350 ई. माना जाता है। इसमें भी रामनवमी निर्णय के क्रम में 'अगस्त्य संहिता' का उल्लेख हुआ है–

इहागस्त्यः
चैत्रमासे नवम्यां तु जातो रामः स्वयं हरिः।
पुनर्वस्वृक्षसंयुक्ता सा च पूर्वाह्णगामिनी।।
श्रीरामनवमी प्रोक्ता कोटिसूर्यग्रहात्मिका।
सैव मध्याह्नयोगेन सर्वकर्मफलप्रदा।।

(चतुर्थ प्रकरण : नवमी निर्णय)

रामोपासना की परम्परा में 'अध्यात्म-रामायण' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसमें भी 'अगस्त्य संहिता' का उल्लेख हुआ है। इसके किष्किन्धाकाण्ड के चतुर्थ अध्याय में श्रीराम के मुख से लक्ष्मण को क्रियायोग अर्थात् रामोपासना का कर्मकाण्ड सुनाने की कथा है। इस सम्पूर्ण अध्याय में संक्षेप में पूजा-विधान का वर्णन किया गया है। इस पूजा-विधान पर 'अगस्त्य-संहिता की पद्धति' का पूर्ण प्रभाव है। इसके अतिरिक्त होमविधि के क्रम में कुण्डनिर्माण की विधि का उल्लेख न कर अगस्त्य-प्रोक्त मार्ग का उल्लेख कर दिया गया है। यहाँ कहा गया है कि आगमशास्त्र के ज्ञाता अगस्त्य मुनि द्वारा प्रतिपादित पद्धति से कुण्ड का निर्माण कर मूल मन्त्र से या पुरुषसूक्त से हवन करें–

अगस्त्येनोक्तमार्गेण कुण्डेनागमवित्तमः।
जुहुयान्मूलमन्त्रेण पुंसूक्तेनाथवा बुधः।।31।।

अगस्त्य संहिता में 18वें अध्याय में कुण्ड निर्माण विधि विस्तार से उल्लिखित है।

'काव्यप्रकाश' के चर्चित प्रदीप-टीकाकार म.म. गोविन्द ठाकुर के पंचम पुत्र महामहोपाध्याय तर्कपञ्चानन आगमाचार्य देवनाथ ठक्कुर ने 1564 ई० में अपनी 75 वर्ष की अवस्था में 'मन्त्रकौमुदी' नामक आगम के सिद्धान्त ग्रन्थ की रचना की। इसमें कुल 37 प्रकरण हैं, जिनमें आगम-कर्मकाण्ड के विविध विषयों का सविस्तर उल्लेख है। इस ग्रन्थ में पाँच स्थलों पर 'अगस्त्य-संहिता' का उल्लेख किया गया है-

(1) इसके 'मण्डलविचार' नामक सप्तम प्रकरण के अन्त में पुरश्चरण के लक्षण पर विचार करते हुए पंचाङ्ग उपासना को पुरश्चरण मानकर प्रमाण के रूप में 'अगस्त्य-संहिता' का उल्लेख किया है-

एतत् कण्ठरवेणैव प्राह चागस्त्यसंहिता।
पञ्चाङ्गोपासनं भक्त्या पुरश्चरणमुच्यते।।

अर्थात् अगस्त्य संहिता भी मुक्तकण्ठ से कहती है कि भक्तिपूर्वक पंचाङ्ग उपासना को पुरश्चरण कहते हैं। 'अगस्त्य-संहिता' 16।51 में भी इन्हीं शब्दों में पुरश्चरण को परिभाषित किया गया है।

(2) 22वें प्रकरण में अर्घ्यादिस्थापन की विधि का उल्लेख करते हुए आवरण-पूजा का विस्तृत विवेचन न कर अगस्त्य-संहिता में उल्लिखित आवरण-पूजा को अपनाने का निर्देश किया है-

शेषं वक्तव्यमार्गेण विदध्यादविरोधिनम्।
अगस्त्यसंहितायान्तु प्रोक्तमावरणार्चनम्।।29।।

(3) 24वें प्रकरण में होम-विधान में देवनाथ ठक्कुर का मत है कि नैमित्तिक कर्म में ही होम करना चाहिए, नित्यकर्म में नहीं। यह मिथिला की परम्परा है, अतः वहाँ पूजन आदि कर्म में हवन नहीं किया जाता है। किन्तु उन्होंने 'अगस्त्य-संहिता' के उस मत का भी उल्लेख किया है, जिसमें नित्य, नैमित्तिक एवं काम्य तीनों कर्मों में होम का विधान किया गया है-

संहितायामगस्त्यस्य समस्तविधिशेषतः।
नित्ये नैमित्तिके काम्येऽप्येतदग्निमुखं मतम्।।175।।

वर्तमान अगस्त्य-संहिता के चतुर्दश अध्याय में 66वें श्लोक में उपर्युक्त श्लोक का उत्तरार्द्ध इसी रूप में उपलब्ध है।

(4) इसी प्रकार सानत्कुमारीय होमविधि का विवेचन करते हुए 24वें प्रकरण में प्रतिदिन जप की संख्या का निर्धारण करते हुए अगस्त्य-संहिता के मत का उल्लेख किया गया है, जिसके अनुसार छह हजार, एक हजार अथवा एक सौ आठ बार जप प्रतिदिन करना चाहिए-

षट्सहस्त्रं सहस्त्रं वा शतमष्टोत्तरं जपेत्।
अगस्त्य-संहितायामप्येष शेषिको विधिः।।44।।

वर्तमान अगस्त्य-संहिता के षोडश अध्याय के तीसरे श्लोक में पुरश्चरण-विधान के क्रम में भी यहीं बात कही गयी है–

षट्सहस्त्रं सहस्त्रं वा शतं वाष्टोत्तरं शुचिः।।3।

(5) 'मन्त्रकौमुदी' के अन्तिम प्रकरण में म.म. देवनाथ ठाकुर ने उन प्राचीन ग्रन्थों का उल्लेख किया है जिनका अध्ययन करके वे प्रस्तुत ग्रन्थ को लिखने में प्रवृत्त हुए। इनमें 'प्रपञ्चसार', 'शारदा-तिलक', 'सारसमुच्चय', 'दीपिका', 'पूजाप्रदीप', 'श्रीरामार्चनचन्द्रिका', 'तन्त्रमुक्तावली', 'सनत्कुमार-तन्त्र', 'नारदीय-तन्त्र' आदि के साथ 'अगस्त्य-संहिता' का भी उल्लेख किया है-

तूर्णायागं सोमशम्भुमतं चागस्त्यसंहिताम्।
संहितां वैष्णवीं तद्वत् तत्त्वसागरसंहिताम्।।5।।

इस प्रकार म.म. देवनाथ ठाकुर ने 'अगस्त्य-संहिता' का उल्लेख जिन विषयों के सन्दर्भ में किया है वे इस संहिता में उपलब्ध हैं।

16वीं शती में मिथिला के महेश ठाकुर ने भी 'अगस्त्य-संहिता' का उल्लेख रामनवमी-प्रकरण में ही किया है–

चैत्रशुक्लनवमी रामनवमी, सा च मध्याह्नयोगिनी ग्राह्या। इसके प्रमाण में उन्होंने 'अगस्त्य-संहिता' को उद्धृत करते हुए लिखा है कि–

चैत्रशुक्ले तु नवमी पुनर्वसुयुता यदि।
सैव मध्याह्नयोगेन महापुण्यतमा भवेत्।
इत्यगस्त्यसंहितोक्तेश्च इति मत्कृतस्मृतिरत्नाकरे।

(तिथितत्त्वचिन्तामणि)

महेश ठाकुर ने इसके अतिरिक्त **नवमी चाष्टमीविद्धा त्याज्या विष्णुपरायणैः।** इस पंक्ति को भी अगस्त्य-संहिता से उद्धृत माना है। प्रस्तुत 'अगस्त्य संहिता' में यह पंक्ति 28वें अध्याय के 13वें श्लोक का पूर्वार्द्ध है, जहाँ **रामपरायणैः** पाठान्तर है। इसके अतिरिक्त महेश ठाकुर ने निम्नलिखित श्लोकों को भी अगस्त्य-संहितोक्त मानकर उद्धृत किया है–

उपोषणं जागरणं पितॄनुद्दिश्य तर्प्पणम्।
तस्मिन् दिने तु कर्त्तव्यं ब्रह्मप्राप्तिमभीप्सुभिः।।
सर्वेषामप्ययं धर्मो भुक्तिमुक्त्यैकसाधनम्।
अशुचिर्वापि पापिष्ठः कृत्वेदं व्रतमुत्तमम्।।
पूज्यः स्यात् सर्वभूतानां यथा रामस्तथैव सः।।

17वीं शती में अनन्तदेव ने भी 'स्मृति-कौस्तुभ' में इसी रामनवमी-निर्णय के प्रसंग में अगस्त्य-संहिता का उल्लेख किया है–

अगस्तिसंहितायां-
चैत्रे नवम्यां प्राक्पक्षे दिवा पुण्ये पुनर्वसौ।
मेषे पूषणि संप्राप्ते लग्ने कर्कटकाह्वये।
आविरासीत्स कलया कौसल्यायां परः पुमान्।
तस्मिन्दिने तु कर्तव्यमुपवासव्रतं सदा।
तत्र जागरणं कुर्याद्रघुनाथपरो भुवि।
प्रातर्दशम्यां कृत्वा तु संध्याद्याः कालिकाः क्रियाः।
संपूज्य विधिवद्रामं भक्त्या वित्तानुसारतः।

ब्राह्मणान्भोजयेद्धुत्वा दक्षिणाभिश्च तोषयेत्।
गोभूतिलहिरण्याद्यैर्वस्त्रालंकरणैस्तथा ।
रामभक्तान् प्रयत्नेन प्रीणयेत्परया मुदा।
एवं यः कुरुते भक्त्या श्रीरामनवमीव्रतम्।
अनेकजन्मसिद्धानि पातकानि बहून्यपि।
भस्मीकृत्वा व्रजत्येव तद्विष्णोः परमं पदम्।
सर्वेषामप्ययं धर्मो भुक्तिमुक्त्येकसाधनम्। इति।

ये सभी उद्धरण इस 'अगस्त्य-संहिता' में उपलब्ध हैं।

आधुनिक काल के विख्यात आगमविद् सरयू प्रसाद द्विवेदी (विक्रम संवत् 1892 से 1963) ने अपने ग्रन्थ 'आगम रहस्य' में भी 'अगस्त्य-संहिता' का पर्याप्त उल्लेख किया है। यह ग्रन्थ राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर से ग्रन्थाङ्क 88 के रूप में प्रकाशित है।

इस ग्रन्थ में आचार्य ने त्रयोदश पटल में पुरश्चरण प्रकरण में अगस्त्य-संहिता से निम्नलिखित स्थल को उद्धृत किया है—

अगस्त्य-संहितायाम्

अथ वक्ष्ये महादेवि पौरश्चरणिकं विधिम्।
विना येन न सिद्धिः स्यान्मत्रो वर्षशतैरपि।।1।।

यह श्लोक किंचित् पाठान्तर से इस ग्रन्थ के षोडश अध्याय के आरम्भ में है।

अगस्त्य-संहिता की प्राचीनता पर विचार

उपनिषदों में आगमशास्त्रीय 'रामरहस्योपनिषद्' तथा रामतापिनीयोपनिषद् वैष्णवागम में महत्त्वपूर्ण है। इसका रचनाकाल निर्धारित नहीं है, किन्तु इसका उल्लेख मुक्तिकोपनिषद् में अथर्ववेद से सम्बद्ध उपनिषदों में किया गया है। सामान्यतः यह अवधारणा रही है कि आदि शंकराचार्य ने जिन उपनिषद्-ग्रन्थों पर शांकर-भाष्य लिखा है, उसके अतिरिक्त उपनिषद् परवर्ती काल के हैं। किन्तु, शंकराचार्य ने उपनिषद् भाष्य में अनेक ऐसे उपनिषदों को उद्धृत किया है, जो आगम की परम्परा में हैं और मुक्तिकोपनिषद् में उल्लिखित 108 उपनिषदों की सूची में हैं।

1. 'श्वेताश्वतरोपनिषद्-भाष्य' में के आरम्भ में आत्मज्ञान के माहात्म्य वर्णन प्रसंग में 'नृसिंहपूर्वतापिनीयोपनिषद्' से **तमेवं विद्वानमृत इह भवति** (नृसिंह पूर्व. 1/6)

2. 'कर्म भी मोक्ष प्राप्ति का साधन है' इस का खण्डन करते हुए 'कैवल्योपनिषद्' तृतीय वल्ली से **"न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः"** उद्धृत किया गया है।

3. इसी प्रसंग में आगे 'योगशिखोपनिषद्' को अथर्ववेद से सम्बद्ध उपनिषद् मानते हुए शंकराचार्य ने लिखा है-

तथा चाथर्वणे विशुद्ध्यपेक्षमात्मज्ञानं दर्शयति-

जन्मान्तर सहस्रेषु यदा क्षीणास्तु किल्विषाः।

तदा पश्यन्ति योगेने संसारोच्छेदनं महत्।।

4. प्रथमाध्याय के सोलहवीं गाथा पर भाष्य में कौषीतकि उपनिषद् से **'एष ह्येव साधुकर्म कारयति'** (318) उद्धत किया है।

इस प्रकार, 'नृसिंहतापिनीयोपनिषद्', 'योगशिखोपनिषद्', 'कौषीतकि-उपनिषद्' तथा अन्य कुछ अथर्ववेद से सम्बद्ध उपनिषदों की रचना शंकराचार्य से पूर्व भी हो चुकी थी। 'रामतापिनीयोपनिषद्' भी अथर्ववेद से सम्बद्ध उपनिषद् है, अतः प्रथम दृष्ट्या ही इन्हें शंकराचार्य से परवर्ती मानना उचित नहीं है। इनेक काल निर्धारण के सम्बन्ध में शोध अपेक्षित है, किन्तु कालनिर्धारण करते समय उपरिलिखित तथ्यों को ध्यान में रखना होगा।

'रामतापिनीयोपनिषद्' में दो स्थलों पर 'अगस्त्य-संहिता' सप्तम अध्याय के श्लोक किंचित् शब्दान्तर से उपलब्ध हैं। प्रथम स्थान पर भगवान् शंकर द्वारा श्रीराम के मन्त्र का जप करने और इसके कारण काशी के अविमुक्त क्षेत्र कहलाने का उल्लेख हुआ है। यहाँ ऊपर बायीं ओर रामतापिनीयोपनिषद् के श्लोक हैं तथा नीचे दाहिनी ओर 'अगस्त्य-संहिता' के संगत श्लोक संख्या के साथ दिये जा रहे हैं।

अथ तं प्रत्युवाच।

श्रीरामस्य मनुं काश्यां जजाप वृषभध्वजः।

मन्वन्तरसहस्रैस्तु जपहोमार्चनादिभिः।।1।। –'रामतापनीयोपनिषद्'

नियतः सोऽपि तत्रैव जजाप वृषभध्वजः।

मन्वन्तरशतं भक्त्या ध्यानहोमार्चनादिभिः।।16।। –'अगस्त्य-संहिता'

ततः प्रसन्नो भगवाञ्छीरामः प्राह शंकरम्।

वृणीष्व यदभीष्टं तद्दास्यामि परमेश्वर।।2।। इति।।–'रामतापनीयोपनिषद्'

ततः प्रसन्नो भगवान् रामः प्राह त्रिलोचनम्।

वृणीष्व पदमिष्टं ते देवानामपि दुर्ल्लभम्।।17।। –'अगस्त्य-संहिता'

अथ सच्चिदानन्दात्मानं श्रीराममीश्वरः पप्रच्छ।

मणिकर्ण्यां मम क्षेत्रे गङ्गायां वा तटे पुनः।

म्रियेत देही तज्जन्तोर्मुक्तिर्नातो वरान्तरम्।।3।। इति।।–'रामतापनीयोपनिषद्'

गंगायां च तटे वापि यत्र कुत्रापि वा पुनः।

म्रियन्ते ये प्रभो देव मुक्तिर्नातो वरान्तरम्।।25।। –'अगस्त्य-संहिता'

अथ स होवाच श्रीरामः।।

क्षेत्रेऽस्मिंस्तव देवेश यत्र कुत्रापि वा मृताः।

कृमिकीटादयोऽप्याशु मुक्ताः सन्तु न चान्यथा।।4।। –'रामतापनीयोपनिषद्'

क्षेत्रे तु तव देवेश यत्र कुत्रापि वा मृताः।

कृमिकीटादयोऽप्याशु मुक्ताः सन्तु न चान्यथा।।29।।–'अगस्त्य-संहिता'

अविमुक्ते तव क्षेत्रे सर्वेषां मुक्तिसिद्धये।

अहं संनिहितस्तत्र पाषाणप्रतिमादिषु।।5।।

क्षेत्रेऽस्मिन्योऽर्चयेद्भक्त्या मन्त्रेणानेन मां शिव।

ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।6।।–'रामतापनीयोपनिषद्'

क्षेत्रेऽस्मिन् योऽर्चयेद् भक्त्या मन्त्रेणानेन शंकर।

अहं सन्निहितस्तत्र पाषाणप्रतिमादिषु।।31।। –'अगस्त्य-संहिता'

त्वत्ते वा ब्रह्मणो वापि ये लभन्ते षडक्षरम्।

जीवन्तो मन्त्रसिद्धाः स्युर्मुक्ता मां प्राप्नुवन्ति ते।।7।।–'रामतापनीयोपनिषद्'

त्वत्तो वा ब्रह्मणो वापि लभते च षडक्षरम्।

जीवन्तो मन्त्रसिद्धाः स्युर्मृता मां प्राप्नुवन्ति ते।।30।। –'अगस्त्य-संहिता'

मुमूर्षोर्दक्षिणे कर्णे यस्य कस्यापि वा स्वयम्।

उपदेक्ष्यसि मन्मन्त्रं स मुक्तो भविता शिव।।8।।

इति श्रीरामचन्द्रेणोक्तम्।। –'रामतापनीयोपनिषद्'

मुमूर्षोर्दक्षिणे कर्णे यस्य कस्यापि वा स्वयम्।

उपदेक्ष्यसि[1] मन्मन्त्रं स मुक्तो भविता शिव।।32।। –'अगस्त्य-संहिता'

द्वितीय स्थान पर रामतापिनीयोपनिषद् में रामोपासना की फलश्रुति के क्रम में 'भवन्ति चात्र श्लोकाः' के द्वारा वे श्लोक कहे गये हैं, जो अगस्त्य-संहिता में भी उपलब्ध हैं। ये सभी श्लोक ग्रन्थ के परिशिष्ट 2 में 'अगस्त्य-संहिता' के सन्दर्भ संकेत के साथ दिये गये हैं।

यहाँ स्पष्ट है कि 'रामतापिनीयोपनिषद्' में किसी पूर्ववर्ती ग्रन्थ से उद्धृत ये श्लोक हैं। जब तक हमें 'रामतापिनीयोपनिषद्' का रचनाकाल स्पष्ट नहीं हो जाता, तबतक हमें कम से कम इतना मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि 'अगस्त्य-संहिता' से ये श्लोक 'रामतापिनीयोपनिषद्' में उद्धृत किये गये हैं और 'अगस्त्य-संहिता' 'रामतापिनीयोपनिषद्' से पूर्व की रचना है।

हेन्स बेकर ने 'अयोध्या' पुस्तक में 'रामतापिनीयोपनिषद्' का रचनाकाल नवम शताब्दी माने जाने का उल्लेख किया है, किन्तु उन्होंने इस पर अपनी कोई टिप्पणी नहीं की है।

अगस्त्य-संहिता' ग्रन्थ की उपलब्धता

हेन्स बेकर ने 'अयोध्या' पुस्तक में 'अगस्त्य-संहिता'का पर्याप्त उल्लेख किया है तथा इसमें वर्णित रामोपासना की विधि का भी संगत उद्धरण के साथ उल्लेख किया है। हेन्स बेकर ने इसी ग्रन्थ मे लिखा है कि उनका यह सम्पूर्ण उल्लेख 'अगस्त्य-सुतीक्ष्ण संवाद' पुस्तक से लिया गया है, जिसका प्रकाशन रामनारायण दास के सम्पादन में लखनऊ से 1898 ई. में हुआ था। हेन्स बेकर ने 'अगस्त्य-संहिता' की 10 अन्य पाण्डुलिपियों का भी उल्लेख होने की सूचना दी है, किन्तु उन पाण्डुलिपियों की विषयवस्तु के प्रसंग में वे मौन हैं। प्रयास करने के बाद भी इसकी एक भी प्रति हमें उपलब्ध नहीं हो सकी।

'अगस्त्य-संहिता' का एक संस्करण कलकत्ता के हितवादी पुस्तकालय से 1916 साल (1909 ई.) में श्रीकमलकृष्ण स्मृतितीर्थ के सम्पादन में बंगला लिपि में बंगला अनुवाद के साथ हुआ। इसके प्रकाशक श्रीमनोरंजन वन्द्योपाध्याय हैं तथा यह कलकत्ता के '10 नं. कलूटोला स्ट्रीट, हितवादी प्रेस, श्रीविनोदबिहारी चक्रवर्ती द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित हुआ था। इसके सम्पादक महोदय ने सूचना दी है कि उन्हें एक पाण्डुलिपि एसियाटिक सोसायटी से, दूसरी पाण्डुलिपि संस्कृत कालेज कलकत्ता से मिली थी तथा दो अन्य पाण्डुलिपियाँ उन्हें अपने गाँव से मिली थी। इन चार पाण्डुलिपियों के आधार पर 'अगस्त्य-संहिता' का यह महत्त्वपूर्ण सम्पादन है। वर्तमान प्रकाशन में इस पुस्तक का उपयोग हमने आधार-ग्रन्थ 'घ.' के रूप में किया है।

विक्रम संवत् 2042 अर्थात् 1985 ई. में हरिद्वार से प. महावीर प्रसाद मिश्र के सम्पादन में 'अगस्त्य-संहिता' के 11 अध्यायों का प्रकाशन हिन्दी अनुवाद

के साथ हुआ। भूमिका में सम्पादक महोदय ने सूचना दी है कि उनके पास 32 अध्यायों की पाण्डुलिपि है, किन्तु अर्थभाव के कारण वे तत्काल 11 अध्याय ही प्रकाशित कर रहे हैं। यह प्रति भी मेरे पास उपलब्ध नहीं है।

इन प्रकाशित कृतियों के अतिरिक्त 'अगस्त्य-संहिता; की अनेक पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हैं। कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा के पुस्तकालय में इसकी एक पाण्डुलिपि उपलब्ध है, जिसकी परिग्रहण संख्या 2429 (1858) है। इसमें भी 32 अध्याय हैं। इसका आरम्भ 'श्रीरामो जयति' से हुआ है। देवनागरी लिपि में लिखी इस पाण्डुलिपि में यद्यपि लेखनकाल नहीं दिया गया है, किन्तु पाण्डुलिपि के विशेषज्ञों की दृष्टि में यह कम से कम 200वर्ष प्राचीन होनी चाहिए।

एक अन्य पाण्डुलिपि डी. ए. वी. कालेज, चंडीगढ़ में भी उपलब्ध होने की सूचना है।

इस प्रकार अगस्त-संहिता की कई पाण्डुलिपियाँ हैं, जिनमें केवल 32 अध्याय हैं, तथा ग्रन्थ को पूर्ण माना गया है।

सन् 1356 से 1371 के बीच विजयनगर साम्राज्य के संस्थापक बुक्का ने तुर्कों के विरुद्ध लड़ाई लड़ने के लिए अपने भाई हरिहर के पुत्र कुमार कम्पन को अभियान पर भेजा था। कुमार कम्पन की सेना के एक भाग का नेतृत्व भारद्वाज-गोत्रीय एक ब्राह्मण गोपनारायण ने किया था। कांचीपुरम् के एक शिलालेख के अनुसार इसी गोपनारायण ने श्रीरंगम् के मन्दिर का भी जीर्णोद्धार कराया था। कहा जाता है कि इस गोपनारायण ने 'अगस्त्य-संहिता' पर एक व्याख्या लिखी थी, किन्तु 'मानसतरंगिणी' नामक वेबसाइट के लेखक ने स्पष्ट स्वीकार किया है कि मैंने इस व्याख्या की पाण्डुलिपि का अवलोकन नहीं किया है–

He also composed a commentary on the Agastya-Samhita but I have not been able to examine this manuscript to further comment on the issue.

वर्तमान सम्पादन

इस सम्पादन में हमने कलकत्ता से प्रकाशित संस्करण का उपयोग करते हुए सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के सरस्वती भवन पुस्तकालय में उपलब्ध देवनागरी लिपि की पाण्डुलिपि से उसका मिलान किया है। सरस्वती भवन की यह पाण्डुलिपि कई अर्थों में महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यह चित्रकूट में गंगा और

पैसुरनी नदी के संगम पर किसी मन्दिर में लिखा गया है, जो रामोपासना का एक प्रसिद्ध स्थल है। इस पाण्डुलिपि की परम्परा की प्रामाणिकता असंदिग्ध है।

इस ग्रन्थ के सम्पादन के क्रम में सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति महोदय के प्रति हम आभार प्रकट करते हैं, जिन्होंने हमें अनुमति देते हुए पाण्डुलिपियों की छायाप्रति उपलब्ध करायी है। इसके साथ ही प्राच्यविद्या के विद्वान् श्री ब्रह्मानन्द चतुर्वेदीजी ने कठिन परिश्रम कर सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय से सम्पर्क कर उनसे अनुमति लेकर हमें सरस्वती भवन पुस्तकालय से इस पाण्डुलिपि की छायाप्रति उपलब्ध करायी है, जिसके लिए हम उनके प्रति आभारी है। साथ ही, सरस्वती भवन के अधिकारी भी धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंने पाण्डुलिपि की प्रति मिलान करने के लिए श्री चतुर्वेदीजी को उपलब्ध कराकर इस कार्य में हमें सारस्वत सहयोग किया है।

इन पाण्डुलिपियों तथा आधार-ग्रन्थ का विवरण इस प्रकार है–

पाण्डुलिपि 'क'

पाण्डुलिपि संख्या– 72223

प्रवेश संख्या– 106918

स्थान– सरस्वती भवन पुस्तकालय, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

विषय प्रविष्टि– पुरोहिती (पौरोहित्य?)

आकार – 11 X 5.5 इंच

लिखित स्थान– 9 X 4 इंच

प्रति पत्र पंक्तिसंख्या– 12

प्रति पंक्ति अक्षर संख्या – 45-47

स्थिति– पूर्ण, पत्रसंख्या 50। (31वाँ अध्याय अनुपलब्ध)

लिपिकाल– वैशाख कृष्ण द्वादशी संवत् 1902 अर्थात् 4 मई 1845 ई.।

लिपिकार– लाला सीताराम।

स्थान– चित्रकूट, गंगा एवं परसुरनी नदी के संगम पर।

पुस्तकी के अधिकारी– श्री श्री श्री श्री महन्त बलभद्र दास।

आरम्भ– श्रीमते रामानुजाय नमः। अगस्त्यो नाम विप्रर्षिः सत्तमो गौतमीतटे। कदाचिद्दण्डकारण्ये सुतीक्ष्णस्याश्रमं ययौ।।1।।प्रत्युज्जगाम तं भक्त्या गंधपुष्पाक्षतोदकैः।पाद्यार्घ्याद्यर्हणां चक्रे तस्मै ब्रह्मविदे मुनिः।।2।

अन्त– आयुरारोग्यमैश्वर्यपुत्रपौत्रप्रवर्द्धनम्। सर्वान् कामानवाप्नोति विष्णुलोके स

गच्छति। इत्यगस्त्यसंहितायां परमरहस्ये हनुमान्मन्त्रयंत्रश्रीरामकवचोद्धारकथनं नाम द्वात्रिंशोध्यायः। 32 अश्लोकसंख्या 2000 लिखतं लालासीताराम श्रीचित्रकूटअस्थाने श्रीरामजीघाटमंदाकिनीपैसुरनीतटे संगमे।। पुस्तकं श्रीश्रीश्रीश्री महंत आचार्य वलभद्रदासजी की वैसाष वदि 12 संवत् 1902 रामः रामः रामः।

इस पाण्डुलिपि के अनेक अध्यायों में श्लोक संख्या सन्देहास्पद है। उदाहरण के लिए पंचम अध्याय के प्रथम श्लोक में संख्या नहीं है तथा द्वितीय श्लोक को ही प्रथम श्लोक माना गया है। आगे भी सर्वत्र श्लोक संख्या नहीं है। कई श्लोकों के बाद जब संख्या दी जाती है, तबवह संख्या कहीं कम पड़ जाती है, तो कहीं अधिक हो जाती है। जहाँ संख्या अधिक हो जाती है, वह स्थल अधिक विचारणीय हो जाता है, क्योंकि वह आदर्श मातृका से प्रतिलिपि करते समय कुछ पंक्तियाँ छूट जाने की स्थिति का द्योतक है। इसमें 31वाँ अध्याय सम्पूर्ण खण्डित है। लिपिकार ने 'एकत्रिंशोऽध्यायः' प्रारम्भ कर 32वाँ अध्याय लिखना प्रारम्भ कर दिया है।

पाण्डुलिपि में अशुद्धियों की भरमार है। अनुस्वार, विसर्ग, रेफ, उकार, एकार, ऐकार आदि मात्राएँ टूट गयी हैं। ये मात्राएँ जीरॉक्स कापी होते समय भी गायब हो सकती हैं, ऐसा मानकर हमने ऐसे स्थलों को सम्पादित पुस्तक की पाद-टिप्पणी में यथास्थिति दिखाने के लिए नहीं लिया है। ऐसे स्थलों पर अन्य पाण्डुलिपियों तथा बंगाल से प्रकाशित प्रति का उपयोग कर पाठोद्धार किया गया है, किन्तु इस पाण्डुलिपि के पाठ एवं उसकी मूल भावना को सुरक्षित रखा गया है।

इतना करने के बाद भी चित्रकूट के घाट पर एक महन्त के उपयोग हेतु लिखित होने के कारण परम्परा और पाठ की दृष्टि से सरस्वती भवन की यह पाण्डुलिपि महत्त्वपूर्ण है । वर्तमान सम्पादन इस पाण्डुलिपि के पाठ का प्रतिनिधित्व करता है।

पाण्डुलिपि 'ख'

सरस्वती भवन पुस्तकालय, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में सुरक्षित यह अगस्त्य-संहिता की अपूर्ण पाण्डुलिपि है। इसमें पत्र-संख्या 1 से 8 तक लगातार है तथा एक अन्य 11वाँ पत्र उपलब्ध है। इस प्रकार इस पाण्डुलिपि में आरम्भ से षष्ठ अध्याय के चतुर्थ श्लोक के पूर्वार्द्ध तक तथा सप्तम अध्याय के तृतीय श्लोक के तृतीय चरण से अष्टम अध्याय के प्रथम श्लोक के द्वितीय चरण तक उपलब्ध है।

पाण्डुलिपि में लिपिकाल, स्थान तथा लिपिकार का नाम अनुपलब्ध है, किन्तु लिपि की दृष्टि से यह अर्वाचीन प्रतीत होती है। इस पाण्डुलिपि का काल 20वीं शती का पूर्वार्द्ध माना जा सकता है। लिपि अत्यन्त स्पष्ट है तथा लिपिकार संस्कृत भाषा के अभिज्ञ प्रतीत होते हैं। फलतः शुद्धता की दृष्टि से यह पाण्डुलिपि महत्त्वपूर्ण है। इसे हमने पाण्डुलिपि संख्या 'ख' के रूप में अभिहित कर पाठान्तर आदि का संकेत किया है। इस पाण्डुलिपि का विवरण निम्न प्रकार से है–

पाण्डुलिपि संख्या– 14971

प्रवेश संख्या– 49653

स्थान– सरस्वती भवन पुस्तकालय, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

विषय प्रविष्टि– पुराणेतिहास

आकार – 24 X 11 से.मी.

लिखित स्थान– 19 X 9 से.मी.

प्रति पत्र पंक्तिसंख्या– 11

प्रति पंक्ति अक्षर संख्या – 37

आरम्भ– श्री गणेशाय नमः। अगस्त्यो नाम विप्रर्षिः सत्तमो गौतमीतटे।

स्थिति– अपूर्ण, पत्रसंख्या 1-8 तथा 11

पाण्डुलिपि 'ग'

सरस्वती भवन पुस्तकालय, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में सुरक्षित यह अगस्त्य-संहिता की अन्य अपूर्ण पाण्डुलिपि है। इसमें पत्रसंख्या 39 तथा 47 से 65 तक उपलब्ध है। अन्त भी खण्डित है। इसमें 19वें अध्याय के 28वें श्लोक से 41वें श्लोक तक तथा 23वें अध्याय के 29वें श्लोक से 32वें अध्याय के 36वें श्लोक तक उपलब्ध है। लिपिकाल का उल्लेख नहीं है, किन्तु लिपि की दृष्टि से पाण्डुलिपि प्राचीन प्रतीत होती है। इसका लिपिकाल 19वीं शती का पूर्वार्द्ध या उसे भी प्राचीनतर अनुमानित है।

यह भी पाण्डुलिपि 'क' की तरह अशुद्धियों से भरी हुई है। यहाँ तक कि 'स' एवं 'श' में भी व्यत्यय है तथा कठिन सन्धि के स्थलों पर तो सर्वत्र अशुद्धि है। लिपिकार संस्कृत से अनभिज्ञ प्रतीत होते हैं। फिर भी अध्याय संख्या 31 इसमें पूर्णतः उपलब्ध है, जो पाण्डुलिपि 'क' में लिपिकार के भ्रम से खण्डित है।

इस पाण्डुलिपि का विवरण इस प्रकार है–

पाण्डुलिपि संख्या– 14673
प्रवेश संख्या– 21161
स्थान– सरस्वती भवन पुस्तकालय, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।
विषय प्रविष्टि– पुराणेतिहास
आकार – 28 X 15 से.मी.
लिखित स्थान– 20 X 7.5 से.मी.
प्रति पत्र पंक्तिसंख्या– 10
प्रति पंक्ति अक्षर संख्या – 40
आरम्भ– न स्पृशतो रामोपासनपूर्वकं।। यदा रामोहमित्येवं चिन्तयेदप्यनन्यधी ।।28।।

स्थिति– अपूर्ण, पत्रसंख्या 39 तथा 47-65 तक।

आधार-ग्रन्थ 'घ'

प्रस्तुत सम्पादन के क्रम में पाठोद्धार एवं पाठान्तर के आदि के निर्देश के लिए हमने बंगाल से प्रकाशित पुस्तक का उपयोग किया है, जिसे 'घ' के रूप में रखा है। इस ग्रन्थ में 32 अध्याय हैं, किन्तु 32 वें अध्याय के अन्त में पाण्डुलिपि 'क' की अपेक्षा कम श्लोक हैं। इसमें भी कतिपय स्थलों पर पाठोद्धार अपूर्ण है। उन स्थलों पर अन्य पाण्डुलिपियों से मिलान करने पर अर्थ स्पष्ट हो जाते हैं। साथ ही, पाण्डुलिपि 'क', एवं 'ग' की अपेक्षा पाठ भेद अधिक है। ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों पाठों का अलग-अगल विकास हुआ है, जिसपर स्थानीय प्रभाव है। इसके सम्पादक एवं अनुवादक प. कमलकृष्ण स्मृतितीर्थ ने संक्षेप में अनुवाद कर इसकी विषयवस्तु को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

अगस्त्य के नाम पर अनेक रचनाएँ

महामुनि अगस्त्य वैदिक ऋषि है। बृहद्देवताकार शौनक ने लिखा है कि अगस्त्य की बहन ब्रह्मवादिनी थीं। वे स्वयं भी ऋग्वेद के अनेक सूक्तों के द्रष्टा हैं। रामायण में अरण्यकाण्ड में अगस्त्य की विस्तृत कथा आयी है, जिसमें आतापी राक्षस को निगल जाने की कथा है। युद्धकाण्ड में भी रावण के साथ युद्ध करने के क्रम में श्रीराम की बैचैनी दिखाई पड़ने पर अगस्त्य मुनि आकर उन्हें सूर्योपासना का उपदेश करते हैं, जो 'आदित्यहृदय' के नाम से विख्यात है। राज्याभिषेक के बाद भी अगस्त्य की चर्चा उत्तरकाण्ड में आई है।

अगस्त्य समुद्र को शोषित करनेवाले ऋषि के रूप में पौराणिक साहित्य में चर्चित हैं। अगस्त्य की स्तुति में एक प्रसिद्ध मन्त्र है–

आतापी भक्षियो ये वातापी च महाबलः।

समुद्रः शोषितो येन स मेऽगस्त्यः प्रसीदतु।।

ऐसा प्रतीत होता है कि गुप्तकाल के बाद में जब आगम, तन्त्र एवं अन्य प्रकार के चमत्कारपूर्ण जादू-टोना का बोलबाला समाज में बढ़ा, तब इस प्रकार के चमत्कारपूर्ण कार्यों के प्रवर्तक तथा विज्ञानी ऋषि के रूप में अगस्त्य चर्चित रहे। न केवल भारत में अपितु इन्डोनेशिया में भी नवम शताब्दी में अगस्त्य की मूर्तियाँ स्थापित की गयी थीं। प्रम्बनान, जाबा, इन्डोनेशिया के पुरातात्त्विक संग्रहालय में महामुनि अगस्त्य की एक प्रतिमा भगवान् शिव के साथ है, जो प्रम्बनान के चण्डी-शिव मन्दिर में स्थापित थी। इन मन्दिर का निर्माण काल 9वीं शती है। इस चित्र में वाम भाग में स्थित अगस्त्य की इस प्रतिमा में उन्हें त्रिशूल तथा जपमाला के साथ दिखलाया गया है। यज्ञोपवीत, तुन्दिल उदर तथा बलिष्ठ काया की यह प्रतिमा अगस्त्य की पहचान है।

अगस्त्य के नाम पर विभिन्न प्रकार की रचनाएँ उपलब्ध हैं। प्रो. कुप्पुस्वामी शास्त्री, पी. पी. सुब्रह्मण्यम् शास्त्री, सी. कुन्हन राजा, वी. राघवन्, ई. पी. राधाकृष्णन् आदि के सम्पादन में मद्रास विश्वविद्यालय से 1937 ई. में प्रकाशित 'न्यू कैटेलोगस कैटेलोगोरम' में अगस्त्य के नाम पर निम्नलिखित रचनाओं की पाण्डुलिपि पाये जाने का उल्लेख किया गया है–

अगस्तिकल्प– तन्त्रशास्त्र

अगस्त्य-कल्प– शिल्पशास्त्र का ग्रन्थ है।

अगस्त्य-कल्प– रामोपासना का आगमशास्त्रीय ग्रन्थ है। जिसका उल्लेख रामार्चन-

चन्द्रिका में आधार-ग्रन्थ के रूप में हुआ है। कहा नहीं जा सकता है कि यह अगस्त्य-संहिता है या इससे भिन्न ग्रन्थ है।

अगस्त्यकल्प– बरौदा ओरियंटल रिसर्च इन्स्टीच्यूट में एक पाण्डुलिपि है, जिसकी पुष्पिका इस प्रकार है– इत्यगस्त्यप्रोक्तमेधादक्षिणामूर्तिकल्पः।

अगस्त्य-गीता– वाराह पुराण एक अन्तर्गत पशुपालोपाख्यान (अध्याय 51-67) अगस्त्यगीता के नाम से उल्लिखित है।

अगस्त्य-निघण्टु– यह शब्दकोश है।

अगस्त्य-व्याकरण– तमिलभाषा का व्याकरण-ग्रन्थ।

अगस्त्य-व्याकरणनिघण्टु

अगस्त्य-व्याकरणोक्तशब्दसंग्रहनिघण्टु।

अगस्त्य-श्रीरामसंवाद

अगस्त्य-संपात– तन्त्र।

अगस्त्य-संवाद– तन्त्र।

अगस्त्य-संहिता– इसे अगस्त्य-सुतीक्ष्ण-संवाद से भिन्न रचना मानी गयी है।

यदुनाथ कृत 'आगम-कल्पलता', उमानन्दनाथ कृत 'नित्योत्सव-निबन्ध', सच्चिदानन्दनाथ कृत 'ललितार्चनचन्द्रिका', 'शाक्तानन्दतरंगिणी', तथा 'तन्त्रसार' में एक अगस्त्य-संहिता की चर्चा है, जिसे शाक्ततन्त्र की रचना मानी गयी है। इस ग्रन्थ से 'गायत्री-कवच' को उद्धृत किया गया है।

अगस्ति-रामायण

अगस्ति संहिता

अगस्तिमत– इसका दूसरा नाम अगस्तीया-रत्नपरीक्षा है। Luis Ftom महोदय ने अपने ग्रन्थ Les Lapidaires Indiens में अन्य रत्न-सम्बन्धी संस्कृत पाठों के साथ इसका सम्पादन तथा फ्रेंच में अनुवाद किया था, जो 1896 ई. में पेरिस से प्रकाशित हुआ।

अगस्तीश्वराष्टक– यह एक स्तोत्र है, जो अद्यार पुस्तकालय में उपलब्ध है।

अगस्त्य-गृह्यसूत्र– आपस्तम्ब संहिता में जिन 18 गृह्यसूत्रों का उल्लेख है, उनमें अगस्त्य के नाम यह इस गृह्यसूत्र का उल्लेख हुआ है।

अगस्त्य-पटल–

अगस्त्य-प्रकाश-संहिता-

अगस्त्य-वास्तुशास्त्र-

अगस्त्यविद्या- मन्त्र । अद्यार पुस्तकालय बुलेटिन भाग 2, पृष्ठ 230

अगस्त्य-स्मृति-

अगस्त्य-संहिता– यहाँ सम्पादकों ने टिप्पणी की है कि अनेक प्रकार की अगस्त्य-संहिताएँ हैं।

अगस्त्य-सूत्र– इसका दूसरा नाम शक्ति-सूत्र है।

अगस्त्याष्टक–

अगस्त्य-दशावतारस्तोत्र–

अगस्त्य-द्वैध-निर्णय–

अगस्त्य-ब्रह्मवैवर्त-पुराण

अगस्त्य-शक्तितन्त्र– इस ग्रन्थ में विद्युत् एवं विद्युत् से चलने वाले यन्त्रों का विवरण है।

इस प्रकार अगस्त्य के नाम से अनेक रचनाओं का उल्लेख यह स्पष्ट करता है कि विभिन्न कालों में विभिन्न विद्वानों ने ज्ञान-विज्ञान, धर्मशास्त्र, उपासना, तन्त्र, मन्त्र, व्याकरण, स्तोत्र आदि विषयों पर रचना कर अगस्त्य के नाम से प्रचारित किया।

आज भी विभिन्न वेबसाइटों पर विद्वानों ने 'अगस्त्य-संहिता' के नाम से अनेक ऐसे तथ्यों का प्रकाशन किया है, जिसे 'अगस्त्य-संहिता' से कोई सम्बन्ध नहीं है। दावा किया जा रहा है कि 'अगस्त्य-संहिता' में सूखी बैटरी बनाने की विधि लिखी हुई है, जिसमें ताँबा और जस्ता का उपयोग कर ऊर्जा उत्पन्न होती है। Chronicles of Hindustan शीर्षक के अन्तर्गत Ancient Indian Approach to Science में वेबसाइट पर जो तथ्य उद्घाटित किया गये है, उसे यहाँ उद्धृत किया जा रहा है। यह लेख चिन्मय युवा केन्द्र के द्वारा 2006ई. में वेबसाइट पर प्रकाशित किया गया था। इस लेख के पक्ष एवं विपक्ष में अनेक विद्वानों ने पत्राचार किया है–

We Beat the World at Batteries

An interesting procedure, that gives proof for the usage and preparation of the battery cell is recorded in Agastya Samhita. The following lines illustrate the electrical cell.
Place copper plates in an earthern pot, cover it with copper sulphate and Moistened saw dust. Spread zinc powder and cover it with mercury. Due to Chemical reaction, +ve and –ve electricity is produced. He further says that this water is decomposed in to Oxygen and Hydrogen. - Agastya Samhita

Interestingly the battery, in the procedure as explained, in the previous text is prepared and the same was tested and proved practical. When a cell was prepared according to Agastya Samhita and measured, it gives open circuit voltage as 1.138 volts, and short circuit current as 23 mA.

ऐसा ही एक तथ्य प्रकाशित किया गया है कि अगस्त्य-संहिता में विमान बनाने की विधि वर्णित है–

Ancient Sanskrit literature is full of descriptions of flying machines - Vimanas. From the many documents found it is evident that the scientist-sages Agastya and Bharadwaja had developed the lore of aircraft construction. The "Agastya Samhita" gives us Agastya's descriptions of two types of aeroplanes. The first is a "chchatra" (umbrella or balloon) to be filled with hydrogen. The process of extracting hydrogen from water is described in elaborate detail and the use of electricity in achieving this is clearly stated. This was stated to be a primitive type of plane, useful only for escaping from a fort when the enemy had set fire to the jungle all around. Hence the name "Agniyana". The second type of aircraft mentioned is somewhat on the lines of the parachute. It could be opened and shut by operating chords

इसी प्रकार डा. एम. एन. दत्त द्वारा अंग्रेजी में अनूदित तथा न्यू भारतीय बुक कॉरपोरेशन, से 2007 में प्रकाशित गरुड़महापुराण की भूमिका में सम्पादक एस. जैन ने लिखा है कि अगस्त्य-संहिता में रत्न-विज्ञान के तथ्य मिलते हैं। उन्ही के शब्दों में--

According to M.N. Dutt the book comprises three Samhitas viz. the Agastya Samhita, the Brhaspati Samhita (Nitisara) and the Dhanvantari Samhita. Each one of those Samhitas would give it a permanent value, and accord to it an undyeing fame among the works of practical ethics or applied medicine. The Agastya Samhita deals with the formation, crystallisation and distgisestive. Traits of the different precious gems and enumerates the names of the countries from which our forefathers used to collect these gems. The cutting, polishing, setting

and apprecising etc. of several kind of gems and diamond, as they were practiced in ancient India, cannot but be interesting to artists and lay men, and the scientific traders unbedded in the highly poetic accounts of these original gems.

इसी प्रकार 'अगस्त्य-संहिता' में विद्युत् उत्पादन एवं विद्युत् संचालित उपकरणों के उल्लेख होने की भी धूम मची है। THE MAGICIAN'S DICTIONARY, An Apocalyptic Cyclopaedia of Advanced M/magic(k)al Arts and Alternate Meanings, Second Edition 1996 में वैदिक देवता वरुण के सम्बन्ध में इस बात का उल्लेख करते हुए कहा गया है –

VARUNA

One of the Vedic deities, the God of Water — symbolizes "the Waters of Space." In the *Agastya Samhita* are instructions for building a dry-cell battery. Liquid energy, called *Mitra Varuna* ("Friendly Water God") is produced. Water can thereby be divided into Prana-vayu and Udana-vayu. Vayu means "air." Thus the Ancient Hindus correctly analyzed water as the mixture of two gases. Prana is the life principle (so must correspond to oxygen, which is essential to life) and Udana means "upward breathing" (so must correspond to hydrogen, which is the lightest element).

इस प्रकार के उल्लेखों का अवलोकन करने से प्रतीत होता है कि 'न्यू कैटेलोगस कैटेलोगोरम' में प्रदत्त सूची में अगस्त्य के नाम पर जिन विभिन्न कालों में विभिन्न विद्वानों द्वारा रचित विविध रचनाओं का उल्लेख हुआ है, उनकी अनुपलब्धता की स्थिति में सभी तथ्य 'अगस्त्य-संहिता' से ही उद्धृत मान लिए गये, क्योंकि रामोपासना के कर्मकाण्ड के रूप में यह संहिता अत्यन्त प्रचलित थी।

इन्हीं परवर्ती प्रक्षेपों की शृंखला में 'अगस्त्य-संहिता' का भविष्य-खण्ड भी है। इसे 'रामानन्दजन्मोत्सवकथा' के नाम से अनेक बार प्रकाशित किया गया है। मेरे पास रामानन्दाचार्य की 700वीं जयन्ती के अवसर पर रामानन्दाचार्य पीठ अहमदाबाद से प्रकाशित 'स्मारिका' उपलब्ध है, जिसमें यह अंश हिन्दी अनुवाद एवं पद्यमय भूमिका के साथ प्रकाशित किया गया है। इसके 131वें अध्याय की पुष्पिका इस प्रकार है– **इति श्रीमदगस्त्य-संहितायां भविष्यखण्डे ऽगस्त्यसुतीक्ष्णसम्वादे श्रीरामानन्दाचार्यावतारोपक्रमे श्रीरामनारदसम्प्रश्नोत्तरं नामैकत्रिंशदुत्तर**

शततमोऽध्यायः। सम्पूर्ण कथा भविष्यकालिक कथन के रूप में पौराणिक शैली में लिखी गयी है। प्रथम 131 वें अध्याय में रामानन्दाचार्य के अवतार का उपक्रम वर्णित है। दूसरे 132वें अध्याय में सभी द्वादश शिष्यों के साथ आचार्यजी के अवतार-ग्रहण का वर्णन है, जिसमें जन्मतिथि देने के क्रम में संवत्, मास, पक्ष, तिथि एवं वार इन पाँच अंगों में से एक अंग प्रत्येक सन्त की जन्मतिथि में अनुल्लिखित है। तीसरे 133वें अध्याय में रामानन्दाचार्य की जयन्ती के अवसर पर कृत्यों का वर्णन है, जिसमें कहा गया है कि षट्कोण पर मध्य में आचार्य रामानन्द को स्थापित कर उसके बाहर वृत्त बनाकर पुनः द्वादश दल लिखकर सभी द्वादश शिष्यों को स्थापित कर षोडशोपचार से उस यन्त्र की पूजा करें। चौथे 134वें अध्याय में रामानन्दाचार्य के दिग्विजय का वर्णन है तथा पाँचवें 135वें अध्याय में आचार्यजी के अष्टोत्तरशतनाम से पूजन का वर्णन है। ये सभी पाँच अध्याय महामुनि अगस्त्य एवं सुतीक्ष्ण के संवाद के रूप में वर्णित है। सम्पूर्ण अंश में रामानन्दाचार्य को देवस्वरूप माना गया है, जो अपने आपमें रामानन्दाचार्यजी के जन्म एवं इस अंश के रचनाकाल के मध्य सुदीर्घ कालान्तर का द्योतक है। इस सम्पूर्ण अंश को इतिहास कहा गया है, जबकि यहाँ इतिहास का कोई तत्त्व नहीं है। सबसे बड़ी ऐतिहासिक भ्रान्ति है कि जब 'अगस्त्य-संहिता' हेमाद्रि के समय में विद्यमान थी, तब इसमें हेमाद्रि के परवर्ती रामानन्द और उनके शिष्यों का उल्लेख होने के कारण यह स्पष्ट है कि इस खंण्ड की रचना परवर्ती काल में हुई है और चूँकि 'अगस्त्य-संहिता' बहुचर्चित थी, प्रामाणिक मानी जाती थी, रामोपासना की परम्परा में आदरणीय थी, यहाँ तक कि वेद की तरह इस संहिता का भी स्वतःप्रामाण्य परम्परा में मान्य था, अतः इस छद्म इतिहास को अगस्त्य-संहिता के साथ जोड़ने का प्रयास किया गया, ताकि उस प्रक्षेप पर कोई ऐतिहासिक दृष्टि से विवेचन करने का साहस न कर सके। अब जबकि मूल 'अगस्त्य-संहिता' पाठकों के हाथों में है, तब ऐसे छद्म-प्रक्षेपों का प्रकरण समाप्त हो जाना चाहिए।

'अगस्त्य-संहिता' में परवर्ती प्रक्षेप

ऊपर हमने ऐसी रचनाओं का उल्लेख किया है, जिनका सम्बन्ध अगस्त्य-संहिता के प्रतिपाद्य विषय से नहीं रहा। इनके साथ ही ऐसी कुछ रचनाएँ भी परवर्ती काल में लिखी गयी, जो विषयवस्तु की दृष्टि से कर्मकाण्ड अथवा उपासना से सम्बद्ध होने के आधार पर 'अगस्त्य-संहिता' से सम्बद्ध थी। इन रचनाओं का विवेचन 'अगस्त्य-संहिता' के वर्तमान संपादन के स्वरूप से है, अतः इन रचनाओं की स्थिति का विवेचन यहाँ आवश्यक हो जाता है।

हेन्स बेकर ने अपनी पुस्तक 'अयोध्या' में अगस्त्य-संहिता से अनेक श्लोकों को उद्धृत किया है तथा इस आधार पर रामोपासना की प्रक्रिया का विशद विवेचन किया है, इस क्रम में उन्होंने 33वें अध्याय से भी अनेक श्लोकों को उद्धृत किया है। हेन्स बेकर ने चूँकि रामनारायण दास द्वारा सम्पादित एवं 1998 ई. में लखनऊ से प्रकाशित 'अगस्त्य-सुतीक्ष्ण संवाद' ग्रन्थ का उपयोग किया है, अतः हेन्स बेकर द्वारा उद्धृत 33वाँ अध्याय रामनारायण दास द्वारा सम्पादित 'अगस्त्य-संहिता' का मूल भाग माना जा सकता है, किन्तु इस 33वें अध्याय का विवेचन इस दृष्टि से आवश्यक है कि यह ग्रन्थ का मूल अंश है या परवर्ती प्रक्षेप है।

इस विषय पर विचार करने से पूर्व इस 33वें अध्याय के कुछ श्लोक यहाँ उद्धृत किये जाते हैं, जिन्हें हेन्स-बेकर ने संकलित किया है–

ॐ नमो भगवते श्रीरामाय परमात्मने।
सर्वभूतान्तरस्थाय ससीताय नमो नमः।।42।।
ॐ नमो भगवते श्रीरामचन्द्राय व्यापिने।
सर्ववेदान्तवेद्याय ससीताय नमो नमः।।43।।
ॐ नमो भगवते श्री विष्णवे परमात्मने।
परात्पराय रामाय ससीताय नमो नमः।।44।।
ॐ नमो भगवते श्रीरघुनाथाय शार्ङ्गिणे।
चिन्मयानन्दरूपाय ससीताय नमो नमः।।45।।
ॐ नमो भगवते श्रीरामकृष्णाय चक्रिणे।
विशुद्धज्ञानदेहाय ससीताय नमो नमः।।46।।
ॐ नमो भगवते श्रीवासुदेवाय विष्णवे।
पूर्णानन्दैकरूपाय ससीताय नमो नमः।।47।।
ॐ नमो भगवते श्रीरामभद्राय वेधसे।
सर्वलोकशरण्याय ससीताय नमो नमः।।48।।
ॐ नमो भगवते श्रीरामायामिततेजसे।
ब्रह्मानन्दैकरूपाय ससीताय नमो नमः।।49।।
विशुद्धज्ञानदेहाय रघुनाथाय विष्णवे।
अन्तःकरणसंशुद्धिं देहि मे रघुवल्लभ।।50।।

नमो नारायणानन्त श्रीराम करुणानिधे।
मामुद्धर जगन्नाथ घोरसंसारसागरात्।।51।।
रामचन्द्र महीपाल शरणत्राणतत्पर।
त्राहि मां सर्वलोकेश तापत्रयमहार्णवात्।।52।।
श्रीकृष्ण श्रीधर श्रीश श्रीराम श्रीनिधे हरे।
श्रीनाथ श्रीमहाविष्णो श्रीनृसिंह कृपानिधे।।53।।
गर्भजन्मजराव्याधिघरसंसारसागरात् ।
मामुद्धर जगन्नाथ कृष्ण विष्णो जनार्दन।।54।।

इन श्लोकों की शैली, भाषा तथा कथ्य के आधार पर स्पष्ट है कि ये परवर्ती पाठ हैं, जो 'अगस्त्य-संहिता' के मूल अंश के आधार पर पौरोहित्य कर्म में सुविधा के लिए रचे गये प्रक्षेप हैं। इसी 33वें अध्याय से हेन्स बेकर ने अनेक ऐसे मन्त्रों का भी उल्लेख किया है, जो 18वें अध्याय में भी हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण 33वाँ अध्याय 'अगस्त्य-संहिता' का व्यावहारिक अध्याय है, जो कर्मकाण्ड कराने में सुविधा की दृष्टि से बाद में किसी पुरोहित के द्वारा रचे गचे हैं।

इसी प्रकार 'अगस्त्य-संहिता' से ली गयी 'रामनवमी व्रत कथा' 'अगस्त्य-संहिता' के दाय के रूप में उपलब्ध है। रामनवमी व्रत कथा की दो पाण्डुलिपियाँ मेरे अधिकार में हैं। दोनों उत्तर मिथिला की प्राचीन लिपि मिथिलाक्षर अथवा तिरहुता में हैं। दोनों में की पुष्पिका में **इत्यगस्त्यसंहितोक्ता रामनवमीकथा समाप्ता** का उल्लेख है। दोनों में पूजा पद्धति में पर्याप्त भिन्नता है, किन्तु कथा पाठान्तर होने के बाद भी एक है। इन दोनों पाण्डुलिपियों के आधार पर रामनवमी व्रत कथा का सम्पादन कर यहाँ परिशिष्ट 3 के रूप में प्रकाशित है। इन दोनों पाण्डुलिपियों का विवरण क्रमशः इस प्रकार है–

पाण्डुलिपि 'अ'

नाम – रामनवमीव्रतकथा
प्राप्ति-स्थान – हटाढ़ रुपौली, झंझारपुर, मधुवनी
स्वत्व – पं. भवनाथ झा
आधार – हस्तनिर्मित वसहा कागज।
आकार – 28 से. मी. लम्बाई एवं 9.5 से. मी. चौड़ाई।
लिखित स्थान – 23 से. मी. लम्बाई एवं 5.5 से. मी. चौड़ाई।

पत्र सं. – 7

पृष्ठ सं. - 12

प्रति पृष्ठ पंक्ति सं.- 8

प्रति पंक्ति अक्षर संख्या – 44-45

लिपि – मिथिलाक्षर या तिरहुता

लिपिकार – बच्चू शर्मा

लिपिकाल – सन् 1262 साल (अर्थात् 1854-55 ई.)।

आरम्भ – अथ रामनवमीपूजाविधिः।सुवर्णप्रतिमां कारयित्वा मृण्मयं वा प्रातः कृतनित्यक्रियः---।

अन्त– इत्यगस्त्यसंहितोक्ता रामनवमीव्रतकथा समाप्ता। ॐ यदक्षरेत्यादि। ॐ नममस्ससीतरामलक्ष्मणाभ्याम्। सन् 1262 साल चैत्रकृष्णषष्ठ्यां शुक्रे। लिखितमिदं श्रीरामनवमीकथापूजापुस्तकम्। श्री बच्चूशर्म्मणे द्विजः।(?)

पाण्डुलिपि 'आ'

नाम रामनवमीव्रतकथा

प्राप्ति-स्थान – हटाढ़ रुपौली, झंझारपुर, मधुवनी

स्वत्व – पं. भवनाथ झा

आधार – ब्रिटिशकालीन कागज।

आकार – 22 से. मी. लम्वाई एवं 9 से. मी. चौड़ाई।

लिखित स्थान – 16.5 से. मी. लम्वाई एवं 6 से. मी. चौड़ाई।

पत्र सं. – 16

पृष्ठ सं. - 30

प्रति पृष्ठ पंक्ति सं.- 7

प्रति पंक्ति अक्षर संख्या – 26-29

लिपि – मिथिलाक्षर या तिरहुता

लिपिकार – अज्ञात

लिपिकाल – सन् 1287 साल (अर्थात् 1879-80 ई.)।

आरम्भ – राम 1 प्र : सु. सीता 1 प्रः सु.।

अन्त– इत्यगस्त्यसंहितोक्ता रामनवमीव्रतकथा समाप्ता। ॐ यदक्षरेत्यादि। ॐ नममस्ससीतरामलक्ष्मणाभ्याम्। सन् 1287 साल चैत्रशुक्लद्वितीयायां लिखित्।(?)

इसी प्रकार सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के सरस्वती भवन पुस्तकालय में अगस्त्य-संहिता के नाम से एक अपूर्ण पाण्डुलिपि सुरक्षित है, जिसमें एकतालीसवाँ अध्याय पूर्ण है।

इस पाण्डुलिपि का विवरण इस प्रकार है–।

नाम अगस्त्य-संहिता

प्राप्ति-स्थान – सरस्वती भवन पुस्तकालय, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

प्रवेश संख्या – 104571

विषय – पुराणेतिहास

आधार – कागज।

आकार – 5.5 इंच लम्बाई एवं 4.5 से. मी. चौड़ाई।

पत्र सं. – 11

पत्रांक – 31-41

पृष्ठ सं. - 22

प्रति पृष्ठ पंक्ति सं.- 8

प्रति पंक्ति अक्षर संख्या – 21-23

लिपि – देवनागरी

लिपिकार – अज्ञात

लिपिकाल – अज्ञात

आरम्भ – १श्रीरामचन्द्राभ्यां नमः। श्रुतिरुवाच।

अन्त– श्रीअगस्त्यसंहितायामेकचत्वारिंशोध्यायः।

यद्यपि इस पाण्डुलिपि पत्रांक 31 से आरम्भ है, अतः प्रथम दृष्ट्या खण्डित प्रतीत होती है और अपेक्षा की जाती है कि इसके पूर्व और परवर्ती पृष्ठ कभी थे किन्तु वे नष्ट हो गये हैं। किन्तु गहन विवेचन करने पर यह पाण्डुलिपि स्वतन्त्र एवं पूर्ण प्रतीत होती है। इस अध्याय के आरम्भ में **१श्रीरामचन्द्राभ्यां नमः** है तथा यह पंक्ति पत्र के ऊपरी भाग से आरम्भ है, अर्थात् इसके पूर्व 40वें अध्याय का अन्त नहीं हुआ है। संख्या 1 भी इस बात का संकेत करती है कि लिपिकार ने पाण्डुलिपि का आरम्भ यहीं से स्वतन्त्र रूप में किया है, न कि विशाल ग्रन्थ के साथ अविच्छिन्न रूप में। पाण्डुलिपि का अन्त पृष्ठ के आधे भाग पर हुआ है, जिसके बाद पृष्ठ रिक्त है। यदि इसके बाद भी 42 अध्याय होता तो पाण्डुलिपि लेखन की शैली के अनुरूप उसी स्थान से लेखन आरम्भ होता अथवा इसी 41वें

अध्याय से यदि अगस्त्य-संहिता का अन्त रहता तो अन्त में ग्रन्थ समाप्ति की पुष्पिका रहती, नमस्क्रियात्मक या आशीर्वादात्मक मंगलाचरण होता। साथ ही पत्रांक दुबारा लिखा गया है। पत्र संख्या 35 की वर्द्धित छाया यहाँ प्रमाण के लिए प्रस्तुत है–

[illegible] ॥२८॥ वन्केडु मिंडुचं
परखंडितमंडितांशखंअशपंडितमनः परदंडितांशं
मन्मानसाब्जमदितं फणिदं वरेण्यं॥ रमाक्षितार ३५
कचकोरमहंभजेते ॥२९॥ तांबूलराग परिरंजित
[illegible]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि उक्त पाण्डुलिपि पूर्ण एवं स्वतन्त्र है तथा पाण्डुलिपियों के बंडल में इसके साथ इसी लिपिकार की दूसरी पाण्डुलिपि रहने के कारण बाद में किसी ने भ्रमवशात् लगातार पत्रांक डाल दिया है।

इस अध्याय में सीताजी की स्तुति है, जो काव्यात्मकता की दृष्टि से इतनी उच्च कोटि की रचना है कि इसे आगमशास्त्र के अन्तर्गत न रखकर विशुद्ध भक्ति-काव्य की कोटि में रखना अपेक्षित होगा।

आचार्य बलदेव उपाध्याय ने 'वैष्णव सम्प्रदायों का साहित्य एवं सिद्धान्त' ग्रन्थ में इस अंश का विवेचन 'जानकी-स्तवराज' के नाम से किया है तथा इसे रामोपासना की परम्परा में रसिक-सम्प्रदाय का स्वतन्त्र एवं मान्य ग्रन्थ माना है। आचार्यजी ने उक्त ग्रन्थ में 'जानकी-स्तवराज' के जिस 49वें श्लोक को उद्धृत किया है, वह वर्तमान पाण्डुलिपि में 54वें श्लोक के रूप में उपलब्ध है।

यद्यपि यहाँ भी इसे आगमशास्त्र के अन्तर्गत सम्मिलित करने का अथक प्रयास किया गया है और सम्पूर्ण स्तुति को श्रुति, संकर्षण के संवाद के रूप में योजित कर शिव के मुख से यह स्तुति करायी गयी है। इस स्तुति में सीता के पादादिकेशान्तवर्णन है। पादादिकेशान्तवर्ण के द्वारा स्तुति की परम्परा भक्ति-काव्यों मे प्रसिद्ध रही है। आदि शंकराचार्य द्वारा विरचित विष्णुपादादिकेशान्त वर्णन प्रसिद्ध है। अतः इसे परवर्ती कवि की रचना मानना उचित होगा।

'अगस्त्य-संहिता का प्रतिपाद्य विषय

'अगस्त्य-संहिता' आगम शास्त्र की परम्परा में रामोपासना का प्रतिनिधि ग्रन्थ है। इसमें रामोपासना के कर्मकाण्ड का विस्तार से प्रतिपादन है, जिसे गृहस्थों के लिए भोग एवं मोक्ष दोनों का प्रदाता कहा गया है। कर्मकाण्ड के अन्तर्गत षोडशोपचार, पंचोपचार, एकादशोपचार पूजा विधि का वर्णन किया गया है। इस कर्मकाण्ड के अन्तर्गत नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य, तीनों में हवन-कर्म को अनिवार्य माना गया है। यह 'अगस्त्य-संहिता' की परम्परा की विशेषता है। इस ग्रन्थ में गार्हस्थ्य-धर्म को भी महिमा-मण्डित किया गया है तथा सांसारिक भोग को मोक्ष का बाधक न मानकर मोक्ष का साधक माना गया है, बशर्ते कि भोग, भोग्य और भोक्ता तीनों के रूप में श्रीराम को स्थापित कर भोग किया जाये और देवता के प्रति पूर्ण समर्पण की भावना विकसित रहे। इस सम्पूर्ण समर्पण तथा अनन्या भक्ति की महिमा 'अगस्त्य-संहिता' में सर्वत्र गायी गयी है। इस संहिता में केवल 'भक्त्या' शब्द का प्रयोग 33 स्थलों पर मिलता है, जो कर्मकाण्ड में भी भक्तिं की सहभागिता को व्यक्त करता है।

इस कर्मकाण्ड को जहाँ गृहस्थों के लिए अनिवार्य बतलाया गया है, वहाँ यतियों, संन्यासियों के लिए इसे हेय मानते हुए कहा गया है कि यतिगण किसी भी साधन से पूजा न करें, क्योंकि ये साधन हिंसा के बिना सम्भव नहीं हैं और यतियों के लिए अहिंसा परम धर्म है। यतियों के लिए योग-पद्धति का विवरण दिया गया है, जिसके माध्यम से अष्टाङ्ग योग का पालन करते हुए योगी ब्रह्मस्वरूप श्रीराम में विलीन होकर मुक्त जाते हैं। योग-मार्ग का पालन गृहस्थों के लिए असम्भव मानकर गृहस्थों को इस पथ पर नहीं चलने का सुझाव देते हुए कहा गया है कि यति धर्म में यदि आसक्ति पाप का कारण होता है, तो गार्हस्थ्य-धर्म में अनासक्ति भी पाप है। यदि गृहस्थ हैं, तो सांसारिक विषयों से अनासक्ति नहीं दिखाएँ और यदि वैराग्य उत्पन्न हो जाने के कारण यति-धर्म में प्रवृत्त हैं, तो आसक्ति न रखें। दोनों ही स्थितियाँ पाप के कारण हैं।

गृहस्थों के लिए केवल ज्ञान को भी श्रेयस्कर नहीं बतलाया गया है। केवल ज्ञान हो जाने से, जीव और ब्रह्म की एकता का ज्ञान हो जाने से गृहस्थ को न तो मुक्ति मिल सकती है न ही इस संसार में सुख मिल सकता है। अतः गृहस्थ को निष्काम भाव से दान, जप, हवन, पूजन, भजन कीर्तन आदि करते हुए जीव और ब्रह्म की एकता का ज्ञान करना चाहिए।

अगस्त्य-संहिता उपासना का शास्त्रीय-ग्रन्थ है, अतः इसमें कर्म के भी निष्काम और सकाम कर्म के भेदों का सांगोपांग विवेचन किया गया है। यहाँ तक कि मारण, मोहन, वशीकरण, उच्चाटन, भ्रामण आदि लौकिक सिद्धियों के लिए भी श्रीराम के मन्त्र का प्रयोग करने की विधि विस्तार से बतलायी गयी है। किन्तु उस स्थल के अन्त में स्पष्ट हिदायत दे दी गयी है कि इन कर्मों के करने से मोक्ष दूर होता चला जायेगा और वे साधक भूत, प्रेत और पिशाच की योनियों में चले जायेंगे। पुनर्जन्म लेकर बार-बार कीट आदि रूप में सांसारिक कष्ट भोगेंगे। अतः साधक को चाहिए कि वे ऐसे सकाम कर्म से विरत रहें।

अपनी उन्नति के लिए सकाम कर्म को भी बुरा नहीं माना गया है। सांसारिक सुख प्राप्त करने के लिए सकाम कर्म करने में बुराई नहीं है, किन्तु इसमें भी दोष दिखाया गया है कि इससे मोक्ष मिलने में बाधा मिलेगी, क्योंकि एक कार्य के दो फल की प्राप्ति नहीं हो सकती है। अन्ततः निष्काम कर्म की श्रेष्ठता हर तरह से यहँ प्रतिपादित है, जिससे ईश्वर की कृपा पाकर साधक भोग और मोक्ष दोनों का अधिकारी हो जाता है।

यहाँ प्रत्येक अध्याय में वर्णित विषय-वस्तु संक्षिप्त रूप से प्रदर्शित किया जा रहा है–

प्रथम अध्याय

अगस्त्य-संहिता का प्रारम्भ महामुनि अगस्त्य और सुतीक्ष्ण के वार्तालाप की भूमिका से हुआ है। दण्डकारण्य में नर्मदा के तट पर सुतीक्ष्ण का आश्रम था। एक दिन वहाँ अगस्त्य का आगमन हुआ, तो अतिथि सत्कार के बाद सुतीक्ष्ण ने पूछा कि मैंने अपने जीवन में कई यज्ञ किए, प्रभूत दक्षिणा दी, दान दिया, फिर तपस्या भी की, किन्तु अब भी मैं काम, क्रोध आदि से पीड़ित हूँ। अब मुझे ऐसा उपाय बतलाएँ, जिससे मैं इस संसार के सागर को पार कर सकूँ।

इस प्रश्न के उत्तर के रूप में महामुनि अगस्त्य ने शिव और पार्वती की एक कथा सुनायी, जिसमें पार्वती द्वारा इसी प्रश्न पर भगवान् शिव ने संसार के सागर को पार करने का उपाय बतलाया था। यहाँ शिव सर्वप्रथम संसार की विभीषिका का वर्णन करते हैं कि माया से ग्रस्त मनुष्य कैसे बार-बार पृथ्वी पर जन्म लेते हैं और फिर अपकर्म कर पुनः रौरव नरक में जा गिरते हैं। अथवा, कुछ लोग वशीकरण, आकर्षण आदि तान्त्रिक क्रियाओं को करते हुए वर्णाश्रम धर्म का विचार न कर मांस, रक्त, मदिरा का अर्पण कर कर्मकाण्ड सम्पन्न करते

हैं, वे भूत, प्रेत, पिशाच या ब्रह्मराक्षस की योनि में जन्म लेते हैं। भगवान् शिव की उक्ति पर सहमत होती हुई देवी पार्वती जब कहतीं हैं कि इस धर्म से किसी का भी उपकार नहीं होनेवाला है, तब शिव पार्वती के साथ परिहास करते हुए पूर्वपक्ष के रूप में कहते हैं कि मैं तीनों लोकों का अन्तक हूँ, इसलिए हिंसा मुझे प्रिय है, मुझे जो मांस अर्पित करते हैं वे मेरे प्रिय हैं।' बहुत परिहास हो जाने पर अन्त में भगवान् सिद्धान्त प्रकट करते हैं कि सच तो यह है कि हिंसकों के लिए इस संसार को पार करना असम्भव है।'

द्वितीय अध्याय

पार्वती द्वारा मुक्ति का उपाय पूछने पर भगवान् परमेश्वर के वास्तविक स्वरूप की व्याख्या करते हैं और आश्रम के अनुसार उपासना पर जोर देते हुए उस परमेश्वर का ध्यान करने का उपदेश करते हैं। यज्ञ, वेदाध्ययन, अतिथि पूजन, गुरुशिष्य परम्परा का पालन, दान आदि गृहस्थों और ब्रह्मचारियों के लिए करणीय है।

तृतीय अध्याय

इस अध्याय के आरम्भ में पार्वती सबके लिए परमेश्वर की उपासना के मार्ग की जिज्ञासा करतीं है। इसके उत्तर में भगवान् शंकर परमेश्वर के द्वारा अवतार लेने का वर्णन कर रामावतार की विस्तृत चर्चा करते हैं। भगवान् श्रीराम स्वयं नारायण के अवतार हैं, श्रीसीता लक्ष्मीस्वरूपा हैं और शेषावतार लक्ष्मण हैं, शंख और चक्र के अवतार भरत और शत्रुघ्न हैं तथा वानर सभी देव के अवतार हैं। ऐसे श्रीराम की आराधना के अनेक मार्ग हैं। कुछ लोग पंचाग्नि व्रत, चान्द्रायण उपवास आदि से आराधना करते हैं तो कोई 'राम', 'राम' जप कर अमरत्व प्राप्त करते हैं। कुछ लोग गार्हस्थ धर्म का पालन करते हुए भगवान् की सेवा कर उन्हें प्रसन्न करते हैं। इस अध्याय में उपासना की अनेक विधियाँ वर्णित हैं।

चतुर्थ अध्याय

पार्वती द्वारा जिज्ञासा करने पर भगवान् शिव हिरण्यगर्भ-सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं। यहाँ एक कथा है कि एकबार जब ब्रह्मा ने तीन सौ करोड़ वर्ष तक निराहार रहकर तपस्या की, तब स्वयं भगवान् विष्णु प्रकट हुए। ब्रह्माजी भाव-विह्वल होकर उनकी स्तुति की। प्रसन्न होकर भगवान् ने ब्रह्माजी से वर

माँगने के लिए कहा तो ब्रह्माजी ने दुर्भाग्य और दरिद्रता से ग्रस्त प्रजा के उद्धार का उपाय पूछा। साथ ही ब्रह्मा ने पूछा कि मनुष्यों और भक्तों के लिए कौन उपाय है, जिससे उन्हें शरीर के अन्त होने पर शान्ति मिले। इसपर भगवान् विष्णु ने ब्रह्मा को षडक्षर मन्त्र 'ॐ रामाय नमः' का सांगोपांग उपदेश किया।

पंचम अध्याय

इस षडक्षर मन्त्र के प्रथम उपदेशक ब्रह्मा हुए। सुतीक्ष्ण के प्रश्न पर अगस्त्य ने आगे की कथा बतलायी कि ब्रह्मा द्वारा उपदिष्ट इस मन्त्र से जब पार्वती भी उपासना करने लगीं, तब उनके मन में ज्ञान का उदय हुआ और पुनर्जन्म के विना भगवान् शंकर को संसार के विनाश की आशंका होने लगी। तब उन्होंने पार्वती को गार्हस्थ धर्म का पालन करते हुए पूजा सामग्रियों से प्रतिदिन श्रीराम की आराधना का उपदेश किया और कहा कि गृहस्थ केवल ज्ञान से इस संसार में और परलोक में कल्याण नहीं प्राप्त कर सकता है उसे दान, होम आदि भी करना चाहिए। आसक्त परिव्राजक और विरक्त गृहस्थ दोनों कुम्भीपाक नरक प्राप्त करते हैं, उन्हें मुक्ति नहीं मिलती है। अतः जो गृहस्थ हैं वे पुष्प, चन्दन, अक्षत, नैवेद्य आदि से सगुण राम की उपासना करें। किन्तु इस विधि से वानप्रस्थी और यति को उपासना नहीं करनी चाहिए, क्योंकि पूजा के साधन हिंसा का त्याग कर प्राप्त नहीं किया जा सकता है। यदि वानप्रस्थी और यती गृहस्थों की तरह इन साधनों से पूजा करते हैं, तो वे 'आरूढपतित' कहलायेंगे।

षष्ठ अध्याय

इस अध्याय से अगस्त्य और सुतीक्ष्ण की वार्ता के रूप में तुलसी-माहात्म्य का विस्तृत वर्णन है, जिसमें तुलसी वृक्ष का दल, मंजरी, काष्ठ आदि प्रत्येक अंग का आध्यात्मिक महत्त्व बतलाया गया है तथा तुलसी-माला धारण करने का विधान किया गया है। तुलसी वृक्ष लगाने से भी भोग और मोक्ष दोनों की प्राप्ति वर्णित है।

सप्तम अध्याय

यहाँ अगस्त्य मुनि एक कथा कहते है कि एकबार भगवान् शंकर देवी पार्वती के साथ वाराणसी में निवास करने लगे तो सभी देवता वहीं आकर जम गये। अब भगवान् शिव को चिन्ता हुई कि ये देवगण तो मेरी उपासना करते हैं, इन्हें मैं मुक्ति कैसे प्रदान करूँ। इसी समय ब्रह्माजी वहाँ पधारे तो भगवान् ने यही जिज्ञासा उनसे की। तब ब्रह्मा ने उन्हें भी षडक्षर मन्त्रराज का उपदेश

दिया। भगवान् शिव सौ मन्वन्तर तक इस मन्त्र का जप करते रहे। तब श्रीराम प्रसन्न होकर प्रकट हुए। भगवान् शिव ने अपनी चिन्ता उनके सामने रखी तो श्रीराम की कृपा से वहाँ बसनेवाले सभी लोग मुक्त होकर श्रीराम स्वरूप विष्णु में विलीन हो गये। पुनः भक्तवत्सल भगवान् शिव ने कहा कि इस संसार में कहीं भी किसी प्रकार जो मृत्यु को प्राप्त करते हैं, उन्हें कैसे मुक्ति मिलेगी? इसपर भगवान् श्रीराम ने इस षडक्षर मन्त्र का माहात्म्य कहा कि ब्रह्मा से या आपसे (शिव से) इस मन्त्र को जो ग्रहण कर जप करेंगे या मुमूर्षु के दक्षिण कर्ण में यदि मन्त्र का उपदेश करेंगे तो, मुक्ति मिल जाएगी। उसी दिन से वारणसी मुक्तिक्षेत्र कहलाने लगी।

अष्टम अध्याय

सुतीक्ष्ण ने पूछा कि इस मन्त्रराज का सर्वप्रथम उपदेश किसने किया तथा कैसे यह पृथ्वी पर प्रतिष्ठित हुआ। अगस्त्य ने कहा कि ब्रह्मा ने सर्वप्रथम अपने पुत्र वसिष्ठ को यह मन्त्र दिया। वसिष्ठ ने वेदव्यास को तथा वेदव्यास ने अपने शिष्य शौनक को सबसे पहले देकर अन्य शिष्यों को भी दिया। उस शौनक से मैंने (अगस्त्य ने) यह मन्त्र लिया और मैं इसे सांगोपांग आपको सुना रहा हूँ।

इसी अध्याय में गुरु का लक्षण बतलाते हुए कहा गया है कि देवों के उपासक, शान्त चित्तवाले, सांसारिक विषयों से विरक्त, अध्यात्म को जाननेवाले, ब्रह्मचर्य-व्रत पालन करनेवाले, वेद, शास्त्र आदि के ज्ञानी, उद्धार और संहार दोनों करने में समर्थ, ब्राह्मणश्रेष्ठ, तन्त्र, यन्त्र एवं मन्त्र के ज्ञाता, धर्म और रहस्य के ज्ञाता, पुरश्चरण करनेवाले, सिद्धपुरुष, जिन्हें मन्त्र सिद्ध हों तथा जो प्रयोगों का ज्ञान रखते हों, तपस्वी और सत्यवादी गृहस्थ गुरु कहलाते हैं।

शिष्य का भी लक्षण विस्तार मे यहाँ वर्णित है कि चाण्डाल पर्यन्त सभी व्यक्ति यहाँ अधिकारी हैं। धर्म में आस्था रखनेवाले, गुरु के भक्त, श्रद्धा के साथ सीखने की इच्छा रखनेवाले, स्त्रियों के प्रति काम, क्रोध आदि से उत्पन्न दुःखों को देखते हुए वैराग्य रखनेवाले, सभी प्रकार से संसार को पार करने की इच्छा रखनेवाले, ब्राह्मण, धर्म और मोक्ष की इच्छा रखनेवाले, निष्काम शिष्य होते हैं। अथवा मन, वचन, कर्म, एवं धर्म से गुरु की नित्य सेवा करने वाले, क्षत्रिय, एवं वैश्य शिष्य होते हैं। अपने वर्ण और आश्रम के लिए कथित धर्म के अनुसार कर्म करनेवाले, सदा पवित्र रहनेवाले, पवित्र नियमों का पालन करनेवाले द्विजों की सेवा करनेवाले, धार्मिक, शूद्र शिष्य होते हैं। पतिव्रता स्त्रियाँ चाहे वे प्रतिलोम विवाह से या अनुलोम विवाह से उत्पन्न हो, वे भी शिष्या हो सकतीं हैं।

अन्त में इस षडक्षर में ॐ, श्रीं, ऐं, क्लीं आदि अन्य बीज लगाकर विभिन्न प्रकार के सकाम प्रयोगों का विवेचन किया गया है। मन्त्र के प्रकार तथा कलशस्थापन-पूर्वक दीक्षा की विधि का संक्षिप्त संकेत है।

नवम अध्याय

इस अध्याय में श्रीराम के यन्त्र का विस्तृत विवेचन है तथा मालामन्त्रोद्धार वर्णित है। यहाँ मालामन्त्र इस प्रकार है- ह्रीं श्रीं क्लीं नमो भगवते रघुनन्दनाय रक्षोघ्नविशदाय मधुरप्रसन्नवदनाय अमिततेजसे बलाय रामाय विष्णवे नमः। इसे चिन्तामणि-मंत्र भी कहा गया है। इस मालामन्त्र तथा 'श्रीं सीतायै नमः' इस सीता मन्त्र से विलसित यन्त्र पर श्रीराम की पूजा कर के उसे धारण करने से दारिद्र्य-दुःखनाश, सन्तान-प्राप्ति, ऐश्वर्य, विद्या, रोगशान्ति आदि अनेक सांसारिक उद्देश्यों की प्राप्ति कही गयी है। दूसरे द्वारा किए गये अभिचार को रोकने में इसे 'वज्रपञ्जर' की संज्ञा दी गयी है।

दशम अध्याय

इस अध्याय में श्रीराम की सांगोपांग-अर्चना की विधि का वर्णन है। इसके अनुसार श्रीराम के द्वार, पीठ पर स्थित अंग तथा परिवार देवताओं में गणेश, सूर्य, शिव, क्षेत्रपाल, धात्री, ब्रह्मा, गंगा, यमुना, कुलदेवता, शंख. पद्म, निधि, वास्तोष्पति, लक्ष्मी, गुरु सरस्वती, आधारशक्ति, कूर्म, नागाधिपति, पृथ्वी, क्षीरसागर, धर्म, ज्ञान, वैराग्य, विमला, उत्कार्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वी, सत्या, ईशाना, वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, हनुमान्, सुग्रीव, भरत विशीषण, लक्ष्मण, अंगद, शत्रुघ्न, जाम्बवान्, धृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अकोप, धर्मपाल, सुमन्त, वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, गोतम, भरद्वाज, कौशिक, वाल्मीकि, नारद, नल, नील, गवय गवाक्ष, गन्धमादन, सुरभि आदि देवों की पूजा करनी चाहिए, क्योंकि इनके प्रसन्न होने पर ही श्रीराम और श्रीसीता का प्रसाद प्राप्त हो सकेगा।

इस अध्याय में एक नारदीय स्तोत्र है, जिसमें इन सभी देवों के प्रति नमस्कार अर्पित किया गया है। इस स्तोत्र को प्रातःकाल पाठ करने से भोग और मोक्ष दोनों की सिद्धि बतलायी गयी है। यहाँ इन देवों की पूजा पंचोपचार, एकादशोपचार या षोडशोपचार से करने का संकेत किया गया है।

एकादश अध्याय

इस अध्याय में सकाम पूजन का प्रायोगिक विवरण है कि यजमान स्नानादि से शरीर की बाह्यशुद्धि कर मातृका-न्यास से अन्तःशुद्धि करें। तब पूजा की सामग्रियों को स्वच्छ कर शंख आदि की पूजा करें। तब वैष्णवन्यास, केशवादिन्यास कर तत्त्वन्यास एवं मूर्तिपंजर-न्यास करें। इस प्रकार षडंग न्यास सम्पन्न कर बाह्य पूजा की तैयारी करें। यहाँ वेदी, अष्टदलकमल, तोरण आदि की निर्माण-विधि वर्णित है। यहाँ कहा गया है कि पुण्यमयी स्त्रियों और गृहस्थों के घिरे हुए स्थान में गायन, वादन और नृत्य के साथ यह आराधना करें। पूजा में प्रयुक्त सामग्रियों का स्थान निर्धारण तथा उनकी आकृति का विवेचन यहाँ किया गया है। इसी क्रम में भूतशुद्धि, हस्तशोधन, पादशोधन आदि की दूसरी परिभाषा भी दी गयी है। जैसे पूजा के लिए पत्र-पुत्र को भक्तिपूर्वक उठाना कर-शोधन है। श्रीराम की कथा का श्रवण और उनके उत्सवों का दर्शन कर्ण एवं नेत्र की शुद्धि है।

द्वादशाध्याय

इस अध्याय में मातृका-न्यास का क्रम बतलाया गया है। 'अ' से 'ह' तक के 52 वर्ण को अनुस्वार के साथ शरीर के प्रत्येक अंग में नियोजित करना मातृकान्यास है। इसी में केशवकीर्त्यादि न्यास भी वर्णित है। साधक अपने शरीर में बीजाक्षरों और देवताओं को व्यस्त कर देवत्व प्राप्त कर लेता है तथा उसका यह पांचभौतिक शरीर पवित्र हो जाता है। इस सम्पूर्ण अध्याय में शरीर के विभिन्न न्यासों का निरूपण किया गया है।

त्रयोदशाध्याय

इस अध्याय में पूजा के पात्रों को यथास्थान रखकर शंखपात्र में सामान्यार्घ्य-स्थापन की विधि प्रारम्भ में बतलायी गयी है कि शंख को आधार पर रखकर सूर्य, चन्द्र और अग्नि के बीज मन्त्र से तीनों मण्डलों की पूजा कर के शंख जल में अंकुश मुद्रा से तीर्थों का आवाहन कर, शंखमुद्रा, चक्रमुद्रा, गरुड़मुद्रा, सुरभिमुद्रा आदि का प्रदर्शन कर देव का अभिषेक करें और उसी जल से यजमान अपने शरीर एवं अन्य सामग्रियों को पवित्र करें। आगे पाद्य, अर्घ्य, आचमन आदि की स्थापना, स्नपन, धूप, दीप, नैवेद्य आदि का विस्तृत वर्णन है।

चतुर्दशाध्याय

इस अध्याय में हवन-विधि का विस्तृत वर्णन किया गया है, जिसमें विभिन्न प्रकार एवं परिमाग के कुण्डों का निर्माण, मेखला की संख्या, लम्बाई,

चौड़ाई एवं प्रकार का वर्णन है। जप की संख्या के आधार पर कुण्ड का परिमाण निर्धारित किया गया है। हवन के अन्य उपकरण जैसे स्रुव एवं स्रुक् के लक्षण, परिमाण एवं संक्षेप हवन में उसके अनुकल्प के रूप में पीपल का पत्ता बतलाया गया है। इसके बाद कुण्ड के वायुकोण में चावल के पीठा से अष्टदल-कमल का लेखन कर उसके विभिन्न दलों को विभिन्न वर्ण से बनाकर उसपर श्रीराम की अर्चना का विधान किया गया है। पुनः अग्निस्थापन की विधि अग्न्यानयन, प्रोक्षण उपसारण, परिस्तरण आदि वर्णित है, किन्तु अपनी शाखा के गृह्यसूत्र में उल्लिखित विधियों का आलम्बन करने की अनुशंसा सर्वत्र की गयी है। अग्नि के संस्कार गर्भाधान से विवाह पर्यन्त कर के उस अग्नि में वैष्णव-चरु बनाने का वर्णन है। उस चरु से अंग सहित सीताराम को हवि समर्पित कर के विनायकादि अंग देवताओं को भी आहुति देने का विधान किया गया है। अन्त में ब्रह्म-दक्षिणा, मार्जन, ब्राह्मण भोजन, चरुप्राशन आदि क्रियाएँ भी उल्लिखित हैं। अध्याय के अन्त में एक महत्त्वपूर्ण निर्देश है कि नित्य, नैमित्तिक एवं काम्य तीनों प्रकार के कर्मों में हवन किया जाना चाहिए।

पंचदशाध्याय

इस अध्याय में श्रीराम की उपासना के क्रम में अनेक प्रकार के सकाम हवनों की विधि का वर्णन किया गया है। इसमें कामना भेद से हविष्य सामग्री में अन्तर बतलाया गया है। जैसे-

बिल्व-पुष्प - ऐश्वर्य

पलाश-पुष्प - मेधा, ज्ञान

चंदन के जल से सुगन्धित जूही फूल के साथ अक्षत मिलाकर हवन करने से राजवशीकरण सिद्ध होता है। दूर्वा या गुरुच के साथ अक्षत मिलाकर हवन करने से रोगनाश और दीर्घायु की बात कही गयी है। इस अध्याय में इस प्रकार के अनेक प्रयोग हैं, जिनसे वशीकरण, उत्तम स्त्री की प्राप्ति, जगद्वशीकरण, सुख, समृद्धि आदि की प्राप्ति होने की बात कही गयी है। अध्यायान्त में सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है कि सकाम भाव से जो उपासना करते हैं, उन्हें उसी कामना की सिद्धि होती है, उन्हें मुक्ति नहीं मिलती; क्योंकि एक कर्म के दो फल नहीं हो सकते। फिर अन्त में निर्देश करते हैं कि श्रीराम का षडक्षर मन्त्र मुक्ति देनेवाला है। इसका प्रयोग मारणादि कर्म में नहीं करना चाहिए; क्योंकि विद्वान् तुच्छ खरगोश पर ब्रह्मास्त्र नहीं चलाया करते हैं।

षोडशाध्याय

इस अध्याय में षडक्षर मन्त्र के पुरश्चरण की विधि का वर्णन किया गया है। इस मन्त्र के प्रतिदिन जप में छह हजार, एक हजार अथवा एक सौ आठ संख्या बतलायी गयी है। इस अध्याय के अनुसार पुरश्चरण के पाँच अंग हैं- पूजन, नित्य जप, तर्पण, होम एवं ब्राह्मण-भोजन। गुरु से प्राप्त मन्त्र की यह पंचागोपासना पुरश्चरण कहलाती है। इस अध्याय में पुरश्चरण कर्त्ता के लिए हविष्यान्न भोजन तथा वर्ज्य पदार्थों का उल्लेख है; पुरश्चरण किस स्थान पर किया जाना चाहिए, इसका भी वर्णन है। यहाँ सम्पूर्ण आचार-संहिता का उल्लेख किया गया है, किन्तु अन्त में प्रतिपादित किया गया है कि निष्काम भाव से इस पुरश्चरण को करने से ईश्वर के साथ साक्षात्कार होगा। गृहस्थों के लिए ब्राह्मण भोजन अनिवार्य बतलाया गया है, किन्तु अशक्त गृहस्थ एवं अन्य प्रकार के साधक भी जपसंख्या को द्विगुणित कर इसकी क्षतिपूर्ति कर सकते हैं। इसी प्रकार, हवन, पूजा अथवा तर्पण में भी अशक्त रहने पर उतनी संख्या में जप कर क्षतिपूर्ति कर सकते हैं। अन्त में, इस पुरश्चरण से भोग और मोक्ष दोनों की प्राप्ति कही गयी है।

सप्तदशाध्याय

इस अध्याय में शिष्य की दीक्षा के अन्तर्गत अभिषेक की विधि का वर्णन है। इसके आरम्भ दीक्षा के लिए शुभ मुहूर्तों का विधान तथा अपनी शाखा के गृह्यसूक्त के अनुसार नान्दीमुख-श्राद्ध, स्वस्तिवाचन आदि का विधान किया है। सूर्यग्रहण के दिन किसी भी मुहूर्त को देखने की आवश्यकता नहीं है। शिष्य कलश की स्थापना कर ब्राह्मणों का वरण करें और वैदिक तथा पौराणिक मन्त्रों से सुन्दर सूक्तों को सुनते हुए विष्णु की पूजा करें। गुरु भी भूतशुद्धि, न्यास आदि के साथ विष्णु-पूजन कर रात्रि में जागरण, कथालाप आदि करते हुए छह हजार मन्त्र जप करते हुए रात्रि व्यतीत करें। दूसरे दिन पुनः भूतशुद्धि, न्यास, पूजन, जप आदि सम्पन्न कर हवन करें। पूर्णाहुति के बाद शिष्य को प्राणायाम कराकर सुरास्त्वां0 इत्यादि मन्त्र से कलश के जल से अभिषेक कराबें। तब शिष्य को नवीन वस्त्र, चन्दन, आभूषण आदि से सज्जित कर षडंगन्यास करें। फिर शिष्य के मस्तक पर हाथ रखकर 108 बार मन्त्र का जप करें। तब गुरु हाथ में जल लेकर उसे शिष्य के हाथों में डाले और मन्त्र दें। शिष्य को विभवानुसार गुरु एवं उनके पुत्र, पत्नी आदि को वस्त्र, आभूषण भोजन आदि देना चाहिए। गुरु को प्रसन्न कर उन्हें विदा कर शिष्य स्वयं भोजन करे और अपने परिजनों को भोजन कराये। उसके बाद प्रतिदिन शिष्य प्रातः, मध्याह्न एवं सन्ध्या में जप करे।

इसी अध्याय में रामगायत्री का मन्त्रोद्धार तथा पुरश्चरण-विधि वर्णित है। इस रामगायत्री के आदि में अनेक बीज मन्त्र लगाकर काम्य प्रयोगों का भी उल्लेख यहाँ किया गया है तथा तर्पण-विधि की वर्णित है।

अष्टादशाध्याय

अध्याय के आरम्भ में श्रीराम की पूजा-सामग्रियों का लक्षण बतलाया गया है। जो पुष्प दूसरे देवता को नहीं चढाया गया हो, पवित्र, सुगन्धित, श्वेत अथवा पीत वर्ण का हो, कीड़े आदि न लगे हों वे पुष्प श्रीराम की पूजा में विहित है। सदावर्त नामक, शंख, जिसकी पीठ तथा मध्य भाग में कमल-नाल का चिह्न हो, शुभ्र जल से पूर्ण हो, पूजन में प्रशस्त है। पाद्य, अर्घ्य आदि के पात्र ताम्बा अथवा सुवर्ण का बना होना चाहिए। ये पूजा-साधन तीन प्रकार के होते हैं- उत्तम मध्यम एवं अधम। पूजा कर्म के वैशिष्ट्य से देश एवं काल के अनुसार शक्ति तथा औचित्य के अनुसार ऐसे साधनों का व्यवहार करें, जिन्हें लोक में निन्दित नही माना जाता हो।

आगे पूजन विधि के क्रम में विभिन्न मुद्राओं-आवाहनी, स्थापनी, सन्निधीकरणी आदि का वर्णन है। दोनों हाथों के अंगूठे को ऊपर की ओर खड़ा कर मुट्ठी बाँध लेने से संनिधीकरणी मुद्रा बनतीं है। इसी मुद्रा में यदि दोनों अंगूठे अन्दर दबे हों तो संनिरोधनी मुद्रा कहलाती है। इसी प्रकार शंख, चक्र, गदा, पद्म, धेनु, कौस्तुभ, श्रीवत्स, वनमाला, योनि आदि दश मुद्राओं के लक्षण दिये गये हैं, जो देवार्चन में प्रशस्त हैं।

आगे यजमान के बैठने के भी आसनों का वर्णन किया गया है- स्वस्तिक, वज्र, वीर, पद्म, योग, गोमुख आदि। इन आसनों के लक्षण यहाँ वर्णित हैं। अध्याय के अन्त में निर्देश है कि जो विष्णुभक्त न हों, उन्हें ये सब रहस्य कहना नहीं चाहिए।

एकोनविंशाध्यायः

इस अध्याय के आरम्भ में श्रीराम के षडक्षर मन्त्र का माहात्म्य बतलाया गया है। हे सुतीक्ष्ण! गाणपत्य, शैव, सौर, शाक्त एवं वैष्णव मन्त्रों में श्रीराम का मन्त्र श्रेष्ठ है। श्रीराम के भी अन्य मन्त्रों की अपेक्षा यह षडक्षर मन्त्र अनायास फल देनेवाला है, अतः इसे मन्त्रराज कहा गया है। इसके जप और पुरश्चरण से ब्रह्म-हत्यादि पाप नष्ट हो जाते हैं, भूत प्रेत, पिशाच, ग्रह और राक्षस सब भाग

जाते हैं। इस मन्त्र से आराधित श्रीराम शीघ्र प्रसन्न होते हैं। जो इस प्रकार कथित मार्ग से मन्त्र की आराधना करते हैं, उन्हें सुख-समृद्धि एवं मोक्ष दोनों प्राप्त होते हैं।

इस प्ररोचना के उपरान्त सुतीक्ष्ण का महत्त्वपूर्ण प्रश्न है कि जब निवृत्ति मुक्ति है और प्रवृत्ति भोग है, ये दोनों परस्पर विरोधी हैं, तब दोनों का एक मार्ग कैसे सम्भव है? इसके उत्तर में अगस्त्य कहते हैं कि जन्म-ग्रहण सम्बन्धी सभी सुखों एवं दुःखों का नाश, जो एक प्रकार का त्याग है, मुक्ति के नाम से जाना जाता है तथा भोग के साधनों का हृदय के साथ जो अत्यन्त संयोग है वह संसार में भोग कहा जाता है, इसलिए भोग और मोक्ष अलग अलग हैं। किन्तु, दोनों परिस्थितियों में आत्मा का अनुसन्धान होता है। आत्मा के अनुसंधान द्वारा आत्मा में स्थित होना मुक्ति है। प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों में आत्मा का ही अनुसन्धान होता है अतः दोनों में साम्य है। जो यह मान लेते हैं कि 'मैं राम हूँ', वे मुक्त हो जाते हैं और श्रीराम ही तो इस जगत् में भोक्ता, भोज्य और भोग की क्रिया तीनों रूपों में स्थित हैं, तब भोग मुक्ति-मार्ग का बाधक नहीं रह जाता है। अतः मैं राम हूँ, ऐसी भावना से जो भोग करते हैं, उन्हें मोक्ष मिलता है। इस प्रकार उनके द्वारा जो दानादि कर्म किए जाते हैं वे श्रीराम को ही समर्पित किए जाते हैं।

किन्तु ब्रह्मज्ञानियों का कभी अनादर न करें तथा दुर्जनों की गोष्ठी और हिंसा का सर्वथा त्याग करें। इसी अध्याय में आगे ईश्वर प्राप्ति के साधन के रूप में योग के आठ अंगों का उल्लेख है तथा अंगों के भेद और लक्षण दिये गये हैं। सभी प्राणियों को वचन, मन एवं कर्म से क्लेश नहीं पहुँचाना अहिंसा है। जैसा देखा गया हो और सुना गया हो, उसी रूप में यदि पुनः कहा जाये तो वह सत्य कहलाता है। भोजन के सम्बन्ध में स्पष्ट निर्देश है कि जितना भोजन कर सकते हों, उसका चतुर्थांश ही भोज्य है। अति तीक्ष्ण, कटु, तिक्त, अम्ल, लवणादि वर्जित है। आगे जप की परिभाषा दी गयी है कि गुरु से प्राप्त मन्त्र के अन्तर्गत अंक्षरों की बार बार आवृत्ति जप कहलाता है।

विंशाध्याय

इस अध्याय के आरमभ में योग के आठ अंगों में से आसन की संक्षिप्त परिभाषा देकर प्राणायाम की विस्तृत विधि का वर्णन किया गया है। जानुमण्डल के ऊपर हथेली के शीघ्रता पूर्वक एक बार फिराकर एक चुटकी बजाने में जो समय

लगता है, उसे मात्रा कहते हैं। पैंतालीस मात्रा का प्राणायाम उत्तम, तीस मात्रा का मध्यम और पन्द्रह मात्रा का अधम होता है। सभी शुभ एवं अशुभ कर्मों के आरम्भ और अन्त में प्राणायाम करना चाहिए। चार सौ प्राणायाम करने से सैकड़ो महापाप मिट जाते हैं। प्राणायाम के विना किए गये सभी निष्फल होते हैं।

आगे योग के शेष अंगों का वर्णन है। इस प्रकार आठो अंगों को पूरा कर योगी सूर्यमण्डल का भेदन कर परमगति को प्राप्त करते हैं।

कर्म योग अथवा ज्ञान योग अथवा दोनों से सगुण अथवा निर्गुण राम की आराधना कर योग के नियमों का पालन करता हुआ साधक भोग और मोक्ष प्राप्त करते हैं। 'कर्मयोग अथवा ज्ञानयोग मैं कल से आरम्भ करूँगा' यह सोचनेवाला तो स्वयं अपनी आँखों में धूल झोंकता है। मानव शरीर में स्थित इन्द्रियाँ विष्ठा के बीच रहनेवाले कीड़े से भी अधिक अपवित्र हैं। जो अपने शरीर पर विश्वास करते हैं, वे मूर्ख हैं। ईश्वर ने केवल दु:ख का अनुभव करने के लिए इस शरीर का निर्माण किया है। सकाम कर्म करने से पुनर्जन्म अवश्यम्भावी है अतः सिद्धान्त यही है कि फल प्राप्ति की कामना से कोई कर्म न करें।

एकविंशाध्याय

अध्याय के आरम्भ में पूर्व पक्ष के रूप में कर्म को भी मुक्ति का साधन मानते हुए उसकी साधकता बतलायी गयी है, किन्तु कर्म को साधन मानने पर क्या क्या विषमताएँ होती हैं उनका उल्लेख करते हुए कर्म की साधकता का खण्डन किया गया है और अन्त में सिद्धान्त के रूप में कहा गया है कि ज्ञान के विना मुक्ति का दूसरा साधन नहीं है इस ज्ञान के साथ अष्टांग योग का मार्ग अपना कर योगी मुक्त हो जाता है। हृदय में स्थित श्रीराम सर्वत्र प्रकाशित होते हैं, जो शरीर के विनष्ट होने पर स्वयं अवशिष्ट रहते हैं। वस्तुतः ऐसे श्रीराम से ऊपर कुछ भी नहीं है। यह ज्ञान और अष्टांग योग का समन्वय वैराग्य और यतित्व के विना दुर्लभः है, अतः शास्त्रानुसार स्वीकृत यतित्व का आचरण करते हुए हर प्रकार से ब्रह्म-कैवल्य का अभ्यास करना चाहिए।

द्वाविंशाध्याय

इस अध्याय के आरम्भ में सुतीक्ष्ण का प्रश्न है कि योग क्या है और किस उपाय से चित्त को जीता जा सकता है। इसपर अगस्त्य कहते हैं कि जिस प्रयत्न से शरीर के अन्तः में वायु का निरोध होता है उसी प्रयत्न से मन भी निरुद्ध होकर आत्मलीन हो जाता है। प्राणवायु और अपानवायु समान कर चित्त को

आत्मा में स्थित कराकर द्वादशार चक्र से निःसृत अमृत को पाकर योगी अमरत्व प्राप्त कर लेता है।

इस सिद्धान्त कथन के बाद इस अध्याय में शरीर की उत्पत्ति की प्रक्रिया का वर्णन किया गया है, जो आयुर्वेद शास्त्र में उत्पत्ति-स्थान का विषय है। सर्वप्रथम प्राणियों के चार प्रकार हैं- उद्भिज, अण्डज, स्वेदज तथा जरायुज। उनके अतिरिक्त तृण, वृक्ष आदि भी पंचमहाभूतों से ही निर्मित हैं। अपने भाग्य दुर्बल होने पर जरायुज शरीर प्राप्त करते हैं। स्त्री और पुरुष के ग्राम्यधर्म से शुक्र और शोणित के सम्मेलन से इनके शरीर का निर्माण होता है। यह गर्भ में प्रविष्ट होकर वायु, जल और अग्नि के प्रभाव से गीला होता है, उबलता है और धीरे धीरे बढ़ता हुआ दशवें मास में जन्म लेकर रोने लगता है। मनुष्य का यह शरीर विष्ठा और मूत्र से लिपटा हुआ अत्यन्त घृणित है। इस शरीर में ईडा, पिंगला, सुषुम्णा, गान्धारी, हस्तजिह्वा, अलंबुषा आदि नाडियाँ होती हैं। पचास हजार शिराएँ हैं, दस जल के स्थान हैं, रस के नौ स्थान हैं, जिनमें पुरुष में सात ही होते हैं। रक्त के आठ, मूत्र के पाँच, वसा के चार, मेद के दो और मज्ञा एवं रेत के एक स्थान होते हैं। शरीर में दश वायु का संचार होता है- प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकल, देवल एवं धनञ्जय। जब शिशु का जन्म होता है, तो सर्वत्र दुःख ही भोगना पड़ता है।

इस अध्याय का यह शरीरोत्पत्ति-वर्णन मानव शरीर के प्रति आसक्ति से विमुख करने के उद्देश्य से किया गया है।

त्रयोविंशाध्याय

इस अध्याय में ब्रह्मविद्या का निरूपण किया गया है। प्रारम्भ में अगस्त्य परमात्मा के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहते हैं कि अद्वैत, आनन्दमय, चैतन्य, शुद्ध एक मात्र ईश्वर हैं, जो बाहर और भीतर प्रकाशित हैं। चैतन्य स्वरूप में परमात्मा स्थावर और जंगम प्राणियों में निश्चित रूप से स्थित है। उस परमात्मा को प्राणी जान नहीं पाते हैं, जिसके लिए अविद्या जिम्मेदार है। वह ज्ञानियों के मन में भी परदा की तरह है। इस अविद्या के कारण ही प्राणियों में सुख और दुःख की अनुभूति होती है। इस अविद्या का नाश होने पर साधक चैतन्य स्वरूप परमात्मा का साक्षात् दर्शन कर लेता है।

यह स्थिति प्राणायाम से होती है। इसके लिए आधार-चक्र पर श्रीराम का ध्यान कर पूरक क्रिया के योग से बाह्य स्थित चैतन्य को भीतर लेकर कुम्भक कर शरीर के पूर्वोक्त दश प्रकार के वायु को एकीकृत करें। इन वायुओं को दृढ़

बाँधकर एक मुहूर्त के आधे समय अर्थात् 24 मिनट तक स्थिर रहकर मुख खोलें। आगे के चरण में इस रुद्ध वायु से एक एक कर ग्रन्थियों का भेदन करें। भ्रूमध्य में स्थित द्विदल कमल से अमृत की टपकती हुई धारा का पान कर उसी धारा में समस्त असत् को प्रवाहित कर साधक अमर हो जाता है। जब पाँचवीं ग्रन्थि का भी भेदन सम्पन्न हो जाता है, तब शब्दब्रह्म से साक्षात्कार होने पर सर्वज्ञता आ जाती है। आगे मूलाधार में स्थित वायु को सुषुम्णा नाडी के द्वारा ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश करायें। इससे यह जन्म सफल हो जाता है और मुक्ति मिल जाती है। हे योगीन्द्र सुतीक्ष्ण! यह सब संन्यास से होता है। यहीं मुक्ति का मार्ग है, जो सभी दर्शनों में कहा गया है।

श्रीराम सत्य हैं, परब्रह्म हैं, राम से ऊपर कुछ भी नहीं है। यह रहस्य अगस्त्य-संहित में कही गयी है। यह 'अगस्त्य-संहिता' अध्यात्म मार्ग की दीपशिखा है। जिसके घर में यह पुस्तक पूजित है, वे सद्यः अभीष्ट फल प्राप्त करते हैं, आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, पुत्र-पौत्र प्रपौत्र आदि की वृद्धि होती है।

चतुर्विंशाध्याय

अध्याय के आरम्भ में अगस्त्य-संहिता में उक्त मार्ग को परम मार्ग मानते हुए श्रीराम के माहात्म्य का वर्णन है। श्रीराम परम ज्योतिःस्वरूप हैं, इस संसार के विस्तार की आत्मा हैं। वसिष्ठ, वामदेव, नारद आदि ऋषियों ने वेद, स्मृति, पुराण आदि का अवलोकन कर यह निश्चय किया है कि श्रीराम यज्ञ स्वरूप हैं, जिससे स्थावर और जंगम प्राणियों की उत्पत्ति हुई है। श्रीराम के मन्त्र शब्द प्रकाश स्वरूप है और श्रीराम से ही इसकी भी उत्पत्ति हुई है, अतः इन मन्त्रों के जप से भोग और मोक्ष दोनों मिल जाते हैं।

इस अध्याय में श्रीराम के अनेक मन्त्रों का निर्देश किया गया है। जिनमें एकाक्षर मन्त्र 'राम्', द्व्यक्षर मन्त्र 'राम', षड़क्षर मन्त्र ॐ रामाय नमः, क्लीं रामाय नमः, ह्रीं रामाय नमः आदि विवेचित हैं। आगे 'राम' पद के साथ 'चन्द्र' एवं 'भद्र' जोड़कर भी ह्रीं, श्रीं, क्लीं ॐ ये बीज पर्याय से लगाकर अनेक प्रकार के मन्त्र होते हैं। इन मन्त्रों के ऋषि, ब्रह्मा, शिव और अगस्त्य हैं, छन्द गायत्री है, देवता श्रीराम हैं, आदि और अन्त के बीज शक्तियाँ हैं तथा भोग और मोक्ष प्रयोजन हैं। इन मन्त्रों में से किसी एक का न्यास सभी अंगों में करना चाहिए। इसके बाद हृदय रूपी कमल के समान आँखोंवाले परात्पर पुरुष श्रीराम का ध्यान कर मानस-पूजा कर एकान्त में जप करें। श्रीसीताराम की विलासमयी युगलमूर्ति का ध्यान कर साधक भोग और मोक्ष पाते हैं। आगे जप, होम, अर्चना आदि

करें। श्रीराम के मन्त्र उन्हीं के स्वरूप हैं, जिनका स्मरण और कीर्तन करने से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र, सभी पापमुक्त हो जाते हैं। इसलिए सदगुरु के उपदेश से मण्डल में श्रीराम के मन्त्र का अनुष्ठान करने से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं।

पंचविंशाध्याय

इस अध्याय में षडक्षर मन्त्र के अतिरिक्त जो श्रीराम के मन्त्र हैं, उनके अनुष्ठान की विधि बतलायीं गयी है। इस अध्याय में सर्वप्रथम पूजा-विधानों एवं जपविधानों का त्याग कर भक्तिभाव से श्रीहरि के समक्ष कीर्तन, भजन, नामोच्चारण आदि करके भी मुक्ति प्राप्त करने की बात कही गयीं है। ऐसे भक्तों के लिए दीक्षा और अन्य विधानों की व्यर्थता कही गयी है।

बाद में कहा गया है कि सभी मन्त्रों में षडक्षर मन्त्र श्रेष्ठ है, अतः अन्य मन्त्रों के भी मूल विधान षडक्षर मन्त्र के समान है। दीक्षा-विधि में भी कोई अन्तर नहीं है। पुरश्चर्या विधि की पूर्वोक्त ही है। इस अध्याय में सूर्यमण्डल के मध्य में स्थित श्रीराम सीता एवं हनुमान् का ध्यान किया गया है। बाह्यपूजा की विधि यहाँ संक्षेप में वर्णित है। यहाँ देवता को अर्घ्य नैवेद्यों का उल्लेख किया गया है।

षड्विंशाध्याय

इस अध्याय में रामनवमी व्रत का विस्तृत विवरण दिया गया है। चैत्र शुक्ल नवमी के दिन पुनर्वसु नक्षत्र में कर्क लग्न में परमपुरुष श्रीराम कौशल्या के गर्भ से उत्पन्न हुए। इस उपलक्ष्य में इस दिन उपवास, व्रत, रात्रि-जागरण करना चाहिए तथा दूसरे दिन प्रातःकाल में दशमी तिथि में श्रीराम की पूजा कर ब्राह्मण-भोजन कराना चाहिए। गाय, भूमि, तिल, सोना आदि दान करना चाहिए।

आगे श्रीराम की प्रतिमा की पूजा कर दान करने का विधान किया गया है। रामनवमी से एक दिन पूर्व स्नानादि क्रिया कर श्रीराम के मन्त्र के साधक का विधिपूर्वक वरण कर उन्हें आचार्य बनायें। फिर उन्हें स्नानादि कराकर नवीन वस्त्र पहनाकर स्वयं भी श्वेत वस्त्रादि धारण कर आचार्य के मुख से रामकथा सुनते हुए रात्रि में भूमि पर सोकर दूसरे दिन वेदी निर्माण कर अन्य विद्वानों के मुख से स्वस्तिवाचन सुनते हुए उसी स्वर्णमयी प्रतिमा का पूजन करें तथा अन्त में संकल्पपूर्वक उसके दान का संकल्प करें। आगे पूजन में प्रयुक्त चन्दन, कुंकुम आदि के निर्माण की विधि वर्णित है। इस दिन नृत्य, उत्सव भजन-कीर्तन आदि करते हुए दिन-रात व्यतीत करें। अगले दिन श्रीराम की विधिवत् पूजा कर

मूलमन्त्र से एक सौ आठ बार पायस से हवन करें। तब आचार्य को सन्तुष्ट कर संकल्प लेकर वह स्वर्णप्रतिमा दान करें। तब दक्षिणा देकर आचार्य और ब्राह्मणों को भोजन कराकर स्वयं भी भोजन करें। इससे अनेक जन्मों के पाप मिट जाते हैं और तुलापुरुष आदि दान का फल मिलता है।

सप्तविंशाध्याय

रामनवमी के दिन प्रतिमा-दान से भिन्न कल्प का विधान किया गया है। आरम्भ में पूर्व अध्याय का अनुकल्प है कि स्वर्ण प्रतिमा के दान करने में यदि आर्थिक कठिनाई हो, तो एक पल के सोलहवें भाग के बराबर सुवर्ण की प्रतिमा दान की जा सकती है।

दूसरा कल्प है कि नवमी के दिन व्रत कर रात्रि में जागरण कर भक्तिपूर्वक श्रीराम का पूजन करें। दशमी तिथि को गाय, भूमि, तिल, हिरण्य आदि वित्त के अनुसार दान करें। इस प्रकार जो रामनवमी का व्रत करते हैं, वे सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं। यह रामनवमी का व्रत नित्यकर्म है। अर्थात्, जो यह व्रत नहीं करते, वे पाप के भागी होते हैं।

आगे इस अध्याय में कहा गया है कि दशम अध्याय में वर्णित विधि से षोडशोपचार से विधिपूर्वक पूजन करें। इस दिन मौन व्रत धारण कर एकान्त में रहते हुए श्रीराम-मन्त्र का जप उस पाप को नष्ट कर देता है, जो पाप बारह वर्षों में भी नष्ट नहीं होता। रामनवमी के दिन प्रत्येक प्रहर में पूजा करनी चाहिए।

अष्टाविंशाध्याय

इस अध्याय में भी रामनवमी व्रत और उस दिन पूजन का माहात्म्य बतलाया गया है। इस दिन उपवास, जागरण, पितृ-तर्पण करना चाहिए। जो रामनवमी के दिन पितरों के निमित्त तर्पण करते हैं, उनके पितर उसी क्षण विष्णु के परमधाम को चले जाते हैं। इस दिन व्रत करने से तुलापुरुष दान का फल मिलता है। रामनवमी का निर्णय करते हुए कहा गया है कि अष्टमीविद्धा नवमी का त्याग वैष्णवों को करना चाहिए। नवमी में व्रत कर दशमी में पारणा करें।

इसी अध्याय में आगे सुतीक्ष्ण द्वारा पूछे जाने पर तत्त्व, जाप्य मन्त्र एवं ध्यान का विस्तृत विवेचन किया गया है। यहाँ त्रिगुणातीत, निर्म्मल ज्योतिःस्वरूप को तत्त्व मानकर 'श्रीराम' को परम जाप्य मन्त्र माना गया है। 'श्रीराम, राम, राम' का जप जो करते हैं, वे भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त करते हैं। इसके बाद श्रीराम का ध्यान बतलाया गया है कि अयोध्या नगर में रत्नमण्डप पर कल्पतरु

की जड़ में रत्न सिंहासन पर आसीन श्रीराम का ध्यान करें। यहाँ अष्टदल कमल पर विभिन्न दलों में अंग, परिजन और परिवार देवताओं की स्थिति का वर्णन कर षोडशोपचार-पूजन का विवरण दिया गया है। यहाँ उल्लेख है कि प्रत्येक मास शुक्लपक्ष की नवमी तिथि को पौराणिक स्तोत्रों एवं वेदपाठ के साथ श्रीराम की पूजा करनी चाहिए।

एकोनत्रिंशाध्याय

इस अध्याय के आरम्भ में न्यास को मन्त्र का कवच कहते हुए जप से पूर्व न्यास का अनिवार्य विधान किया गया है कि केशवकीर्त्यादि-न्यास, तत्त्वन्यास, परमहंसन्यास, प्रणवन्यास, मातृकान्यास आभ्यन्तरमातृकान्यास क्रमशः कर मन्त्र का जप करें। यदि इन न्यासों को करने में अशक्त हों, तो केवल मन्त्र का भी जप किया जा सकता है।

इस अध्याय में आगे श्रीराम के मन्दिर में प्रतिष्ठा के लिए शुभ दिन की गणना की गयी है। चैत्र शुक्ल नवमी को चन्द्र, तारा आदि का बलाबल देखे विना श्रीराम की प्रतिष्ठा करनी चाहिए। अथवा माघ शुक्ल नवमी को चन्द्रमा और तारा शुभ होने पर करें। मार्गशीर्ष अथवा वैशाख की पूर्णिमा के दिन भी मूल आदि दोष न होने पर प्रतिष्ठा करें। गोपाल कृष्ण की स्थापना के लिए श्रावण, नृसिंह और केशव की प्रतिमा-स्थापन के लिए वैशाख एवं राम के लिए चैत्र प्रशस्त मास है। भगवान् अनन्त की प्रतिमा भी माघ में स्थापित करें।

मन्दिर की वास्तु का विधान किया गया है कि मन्दिर के स्थान से काँटा, ईंट, पत्थर आदि हटाकर वहाँ तबतक खोदें जबतक जल छूटने लगे। फिर पत्थर और बालू से भरकर उस स्थान को दृढ़ कर पत्थर कूटकर ठोंक पीट कर दो हाथ ऊँचा चबूतरा (भूमिका) बनावें। इसपर सुन्दर देवालय का निर्माण करें। इसके चारों ओर गोपुर से युक्त प्राकार का निर्माण करावें। मन्दिर के गर्भगृह में दो हाथ की चौकोर वेदी बनाकर पीठ के आगे हनुमान्, अग्निकोण में सुग्रीव, दक्षिण में भरत, नैर्ऋत्य में विभीषण, उत्तर में शत्रुघ्न और ईशान कोण में जाम्ववान् का अंकन करें एवं बीच में श्रीराम का अंकन करें। इस यन्त्र का अंकुरारोपण आदि कर प्रतिष्ठापन करें और कुटुम्बवाले दरिद्र ब्राह्मण को यह मन्दिर दान करें।

त्रिंशाध्याय

इस अध्याय में दशाक्षर आदि मन्त्र का विधान किया गया है। तथा प्रत्येक मन्त्र के लिए अलग-अलग ध्यान बतलाये गये हैं। आगे लक्ष्मण भरत, शत्रुघ्न, हनुमान् इन अंग देवताओं के मालामन्त्र का विधान किया गया है। अन्त

में कहा गया है कि श्रीराम के अनेक मन्त्र हैं, उन मन्त्रों के साथ लक्ष्मण का मन्त्र भी जपना चाहिए, तभी दशाक्षर आदि मन्त्रों की सिद्धि होगी। कौन मन्त्र किस साधक के लिए अनुकूल होगा, इसकी विवेचना के क्रम में शत्रु और मित्र का जो विचार किया जाता है, वह भी लक्ष्मण के मन्त्र में नहीं किया जाता है। इस प्रकार श्रीराम के मन्त्र के साथ लक्ष्मण के मन्त्र का जो जप करते हैं, वे सभी पापों से मुक्त होकर सभी कामनाओं को पाता है।

एकत्रिंशाध्याय

इस अध्याय में श्रीराम एवं लक्ष्मण के मन्त्रों के विविध प्रयोग संकलित हैं। श्रीराम एवं लक्ष्मण के विभिन्न ध्यानों का स्मरण करते हुए षडक्षर मन्त्रराज के जप करने से विभिन्न प्रकार की लौकिक सिद्धियों का प्रतिपादन किया गया है। जैसे– अयोध्या में राज्याभिषिक्त श्रीराम का ध्यान करें और एकाग्र होकर पचास हजार मन्त्र का जप कर अपने नष्ट राज्य को पावें। नागपाश से विमुक्त श्रीराम का ध्यान करते हुए एकान्त में रहकर दस हजार जप कर बेड़ी के बन्धन से मुक्त हो जाता है। हनुमानजी के द्वारा लायी गयी औषधियों से कष्ट से मुक्त श्रीराम का ध्यान करते हुए दस हजार जप करने से मनुष्य अपनी अपमृत्यु को जीत लेता है। मेघनाद का वध करनेवाले श्रीलक्ष्मण का ध्यान करते हुए एकाग्र होकर जप करने से शीघ्र ही बहुत सारे दुर्जय शत्रुओं को जीत लेते हैं। शूर्पणखा की नाक काटने के लिए उन्मुख श्री लक्ष्मण का ध्यान करते हुए एक हजार जप करने से इन्द्र आदि को भी जीत लेते हैं। श्रीराम के चरणकमल की सेवा करने के लिए द्वार बनाकर अवस्थित श्री लक्ष्मण का ध्यान करते हुए एकान्त में जप करते हुए साधक अनेक महारोगों को जीत लेते हैं।

यहाँ कहा गया है कि भोतिक सिद्धि के लिए श्रीराम के मन्त्रों का प्रयोग पापकारक भी हो सकता है, किन्तु लक्ष्मण-मन्त्र का प्रयोग पापकारक नहीं होता है। अतः विशेष रूप से लक्ष्मण की पूजा लौकिक सिद्धि के लिए करनी चाहिए।

द्वात्रिंशोऽध्याय

इस अध्याय में हनुमान् के कवच मन्त्र का पाठोद्धार का विवरण देते हुए इसके जप करने से भूत, प्रेत, पिशाच आदि के दूर भागने की बात कही गयी है। इस हनुमत्कवच में एक सौ वर्ण हैं और पचीस से अधिक शब्द हैं। इस मन्त्र के एक हजार जप का पुरश्चरण श्रीराम अथवा शिव के मन्दिर में करना चाहिए। छोटे-मोटे रोगों की शान्ति के लिए एक सौ आठ जप करना चाहिए। तीन दिन तक

जप करने से साधक संकटों से छुटकारा पा लेते हैं। भयंकर रोगों की शान्ति के लिए एक हजार आठ जप करें। इस अध्याय में हनुमान् के माला मन्त्र का भी विधान किया गया है तथा अनेक कामनाओं की सिद्धि के लिए जप से पूर्व अनेक प्रकार के ध्यान बतलाये गये हैं। यही हनुमान् यन्त्र का वर्णन है तथा उसे ताबीज में जड़कर पहनने का विधान है। आगे श्रीराम के यन्त्र और कवच का वर्णन किया गया है। श्रीराम के यन्त्र में कुल मिलाकर इक्कीस कोष्ठ हैं। यह वज्रपंजर नामक यन्त्र कहलाता है। आगे श्रीराम का कवच है, जिसका लेखन यन्त्र पर करने का विधान किया गया है। इस यन्त्र पर पूजन कर इसे धारण करने से शत्रुओं का शमन, सभी उपद्रवों का नाश, आयु, आरोग्य में वृद्धि, पुत्र-पौत्रादि में वृद्धि तथा सभी कामनाओं की पूर्ति होती है।

विषयसूची

***

अगस्त्य-संहिता

श्रीरामो जयति।[1]

अगस्त्यो नाम विप्रर्षिः सत्तमो गौतमीतटे।
कदाचिद्दण्डकारण्ये सुतीक्ष्णस्याश्रमं ययौ।।1।।

अगस्त्य नाम के श्रेष्ठ ब्रह्मर्षि किसी समय में दण्डकारण्य में गौतमी नदी के तट पर स्थित सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम पर पहुँचे।

प्रत्युज्जगाम तं भक्त्या गन्धपुष्पाक्षतोदकैः।
पाद्यार्घ्याद्यर्हणां चक्रे तस्मै ब्रह्मविदे मुनिः।।2।
सुतीक्ष्णस्तं प्रणम्याह[2] सुखासीनं तपोनिधिम्।
श्रीमदागमनेनैव जीवितं सफलं मम।।3।।
अद्य जन्मसहस्रेषु तपः फलति संचितम्।

मुनि सुतीक्ष्ण ने उनकी आगवानी की और चन्दन, पुष्प, अक्षत, जल, हाथ-पैर धोने का जल देकर उस ब्रह्मवेत्ता मुनि का पूजन किया। जब वे सुखपूर्वक आसन पर बैठ गये, तब सुतीक्ष्ण मुनि ने कहा कि श्रीमान् के आगमन से ही मेरा जीवन सफल हो गया। आज सैकड़ों जनमों की तपस्या का फल मुझे मिल गया।

कामक्रोधादिभिर्भूयो भूयोऽहं पीडितो मुने।।4।।
नाद्राक्षं सम्यगिष्ट्वापि क्रतुभिर्बहुदक्षिणैः।[3]
सत्पात्रे सर्वदानानि दत्वा तु मुनिसत्तम।।5।।
भवाब्धेस्तरणोपायं तपस्तप्त्वा सुदुष्करम्।
किं करिष्याम्यहं तात क्व यास्यामीति तद्वद।।6।।

हे महामुनि! मैं काम क्रोध आदि से अत्यन्त पीड़ित हूँ। मैंने कई यज्ञ किये, जिनमें पर्याप्त दक्षिणा दी, सत्पात्र को दान किया, किन्तु संसार को पार लगाने का

1. क. श्रीमते रामानुजाय नमः।ख. श्री गणेशाय नमः। 2. ख. मुनिं प्राह। 3.ख. °भूरिदक्षिणैः।

उपाय मैंने नहीं देखा। कठिन तपस्या भी की; किन्तु अब मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? इसका उपदेश करें।

इत्युक्तः सोऽब्रवीत्तेन कुम्भभूर्विगतस्पृहः।[1]
क्षणं विचार्य्य तत्पौर्वापर्य्येण मुनिपुङ्गवः।।7।।

ऐसा कहने पर वीतराग महामुनि अगस्त्य ने कुछ देर सोचकर बारी बारी से सुतीक्ष्ण को कहने लगे।

अगस्त्य उवाच

अस्ति वक्ष्यामि ते सर्वं रहस्यं वृषभध्वजः।
यत्प्रत्यपादयत्पूर्वं[2] पार्वत्यै कृपयात्मवित्।।8।।

अगस्त्य बोले – 'इसका भी उपाय है। प्राचीन काल में आत्मज्ञानी भगवान् शिव ने प्रेमपूर्वक पार्वती से जो रहस्य कहा था, वहीं मैं तुमसे कह रहा हूँ।

[3]कदाचित् पार्वती प्राह भर्तारं भक्तवत्सलम्।
कथं मे देव निस्तारो भवाब्धेस्तरणं भवेत्।।9।।
भवाब्धौ मोहिताः सर्वे सद्गतिं प्राप्नुवन्ति ते।

किसी समय में पार्वती ने भक्तवत्सल भगवान् शंकर से पूछा – हे देव! मुझे मुक्ति कैसे प्राप्त होगी और संसार से कैसे पार लगेगा? इस संसार रूपी समुद्र में मोह-ग्रस्त होकर कैसे सभी सद्गति को प्राप्त कर सकेंगे?

ईश्वर उवाच

कामक्रोधादिभिर्दोषैर्दुष्टास्तत्र पुनः पुनः।
उत्पद्यन्ते विलीयन्ते[4] पुनर्व्यामोहितास्त्वया।।10।।

ईश्वर बोले – काम, क्रोध आदि दोषों से इस संसार में लोग आपके द्वारा माया से मोहित होकर बार-बार उत्पन्न और विलीन होते देखे जाते हैं।

रौरवादिषु पच्यन्ते पुनः संसारिणो भुवि।
कर्मशेषात् प्रजायन्ते पंग्वन्धबधिरादयः।।11।।

वे पृथ्वी पर उत्पन्न होकर रौरव आदि नाम के नरकों में पचते हैं और पुण्य कर्म के क्षीण होने से लँगडे, अन्धे, बहरे आदि हो जाते हैं।

---

1. क. बभूव विगतस्पृहः। 2. क. प्रीत्योत्पादयत्पूर्वं।3. घ. यहाँ से छह चरण अनुपलब्ध। 4. घ. प्रलीयन्ते।

कृमिकीटादयो भूत्वा पुनः संसारिणो भुवि।
कुष्ठाद्युपहताः[1] केचिच्चौरव्याघ्रादिभिर्हताः।।12।।

फिर पृथ्वी पर कीड़े-मकोड़े के रूप में जन्म लेकर ये संसारी कुष्ठ आदि रोगों से जकड़े हुए तथा कुछ चोर-डाकू, बाघ आदि के द्वारा मार डाले जाते हैं।

प्रविशन्ति जलेऽग्नौ वा देशाद् देशं व्रजन्ति हि।
परस्त्रीधनहन्तारस्तापयन्ति सतः सदा।13।।

जो लोग दूसरे की स्त्री अथवा धन का हरण करते हैं और सज्ननों को सताते हैं; वे पानी मे डूबते हैं, आग में झुलसते हैं अथवा इस स्थान से उस स्थान भटकते रहते हैं।

देवब्राह्मणवित्तैस्तु येषां जीवनमन्वहम्।
राजसाः तामसाश्चैव हर्तारो धनजीविनः।।14।।
पुत्रदारादिभिर्युक्ता दुःखावर्ते भ्रमन्त्यहो।

जो देवता, ब्राह्मण और पुरोहितों के धन से जिनका जीवन चलता है, ऐसे राजस और तामस स्वभाव के लोग पुत्र, पत्नी आदि से युक्त होकर इस दुःख के भँवर में घूमते रहते हैं।

[2]कलौ प्रायेण सर्वेऽपि राजसा तामसास्तथा।।15।।
निसिद्धाचारिणः सन्तो मोहयन्त्यपरान्बहून्।
यथाभूतः प्रभुर्ल्लोके सेवकाः स्युस्तथाविधाः।।16।।
अतो मदीयाः सर्वेऽपि हिंसकाःस्वप्रियाः प्रिये।
वश्याकर्षणविद्वेषस्तम्भनोच्चाटनादिषु ।।17।।
शश्वदावां समाराध्य भवन्ति फलभागिनः।
आवाभ्यां पिशितं रक्तं सुरां चापि सुरेश्वरि।।18।।
वर्णाश्रमोचितो धर्ममविचार्य्यार्पयन्ति ये।
भूतप्रेतपिशाचास्ते भवन्ति ब्रह्मराक्षसाः।।19।।

कलियुग में प्रायः सभी राजस या तामस प्रवृत्ति के लोग होते हैं। निषिद्ध कर्म करनेवाले हैं और वे बहुत से दूसरे लोगों को कष्ट देते हैं। संसार में जैसा मालिक होता है, वैसे ही सेवक भी होते हैं। इसलिए हे प्रिये! वे सभी हिंसक मेरे

---

1. घ. केचिच्छस्त्रहताः। 2. क. एवं ख. में पंक्ति के क्रम में अन्तर है ।

प्रिय हैं। वशीकरण, आकर्षण, विद्वेषण, स्तम्भन, उच्चाटन आदि प्रयोगों में लीन रहनेवाले वे नित्य हम दोनों की आराधना करके फल पाते हैं। हमदोनों को तो मांस, रक्त, सुरा भी समर्पित करते हैं, किन्तु हे सुरेश्वरि! वर्ण और आश्रम के लिए विहित धर्म का विचार किए विना जो हमदोनों को मांस, रक्त, मदिरा अर्पित करते हैं, वे भूत, प्रेत, पिशाच और ब्रह्मराक्षस होते हैं।

पुनस्तदन्ते जायन्ते विप्रदेवाधिकारिणः।
तत्तद्रूपेण जायन्ते स्वस्वदोषानुरूपतः।।20।।

और फिर मृत्यु पाकर पुरोहित और मन्दिर के अधिकारी होते हैं, फिर अपने दोषों के अनुसार भूत, प्रेत, पिशाच आदि के रूप में जन्म लेते हैं।

पार्वत्युवाच

नायं धर्मो हि देवेश परेषामुपकारकृत्।
अतो मे ब्रूहि देवेश धर्मो यस्त्वं कृपानिधे।।21।।

पार्वती बोली– हे देवाधिदेव, हे करुणानिधि! यह वशीकरण आदि धर्म दूसरे का उपकार करनेवाला नहीं हैं, अतः जो धर्म है, वह मुझे बतलाइए।

ईश्वर उवाच

सत्यं वदाम्यहं देवि यन्मां त्वं परिपृच्छसि।
हन्ताहं सर्वलोकानां यतो हिंसैव मे प्रिया।।22।।

महादेव बोले- हे देवि! मैं ठीक ही तो कहता हूँ, जो तुम मुझे पूछ रही हो। मैं तो सभी लोकों का अन्तक हूँ; अतः हिंसा मुझे प्रिय हैं।

ये वा भूतानि निघ्नन्ति विधिनाविधिनापि वा।
समर्पयन्ति भूतेभ्यो मत्प्रियास्ते सदा प्रिये[1]।।23।।

जो प्राणियों का वध विधानपूर्वक या विना विधान के भी करते हैं और भूत-प्रेतों को समर्पित करते हैं वे सदा मेरे प्रिय हैं।

अहं तमोमयो नित्यं हन्मि भूतानि भामिनि।
मत्कर्म हननं नित्यमतो हिंसैव मे प्रिया।।24।।

हे भामिनि! मैं नित्य तमोमय हूँ और प्राणियों का संहार करता हूँ। संहार करना मेरा कर्म है, अतः हिंसा ही मेरा प्रिय है।

---

1. घ. मत्प्रियाः सर्व्वदा प्रिये।

मत्कृत्याचारिणः सर्वे वल्लभा मम वल्लभे।
लोके स्वाम्यनुकल्पेन सेवां कुर्वन्ति सेवकाः।।25।।
भक्त्यार्पयन्ति ये मह्यं तवापि पिशितादिकम्।
उत्पादयन्ति चानन्दं गणेभ्यो वा सुरप्रिये।।26।।

हे स्वामिनि! प्रिये! जो कार्य मैं करता हूँ, उन कार्यों को करनेवाले सभी मेरे प्रिय हैं। इस संसार में स्वामी के समान ही सेवक भी सेवा करते हैं। हे देवप्रिये पार्वति! मुझे या तुम्हें जो भी व्यक्ति भक्तिपूर्वक मांस आदि अर्पित करते हैं उससे हमें या हमारे गणों भूत-प्रेत पिशाच आदि को प्रसन्नता होती है।

तवापि च मदीयानामस्माकं पिशितादिकम्।
तृप्तिमुत्पादयन्त्येव विधिनाविधिनार्पितम्।।27।।

तुम्हें और मुझे दोनों को विधिपूर्वक या विना विधि के भी अर्पित किये गये मांस आदि संतुष्टि तो देते ही हैं।

ब्रह्मा सृजति भूतानि विष्णुः तान्परिपालयेत्।[1]
तान्यहं हन्मि भूतानि कृतिरस्माकमीदृशी।।28।।

ब्रह्मा प्राणियों की सृष्टि करते हैं, विष्णु उनका पालन करते हैं और मैं उनका संहार करता हूँ। हमलोगों के तो ये ही कार्य हैं।

रजोगुणालयो ब्रह्मा विष्णुः सत्त्वगुणालयः।
तमोगुणालयोऽहं स्यां स्वस्वकार्याणि कुर्महे।।29।।

ब्रह्मा में रजोगुण का निवास है, विष्णु सत्त्वगुण के आलय हैं और तमोगुण का आलय मैं हूँ। हमसब अपने अपने कार्य करते हैं।

तत्तद्गुणानुगुण्येन क्रियतेस्माभिरीदृशम्।

उन उन गुणों के अनुरूप हमसब इस प्रकार कार्य करते हैं।

भवाब्धेस्तरणं देवि हिंसकानान्तु दुर्लभम्।।30।।
कामादिग्रस्तचित्तानां कुतो मुक्तिर्वद प्रिये।।31।।

हे प्रिये! लेकिन इस संसार रूपी सागर को पार करना हिंसकों के लिए दुर्लभ है। काम आदि से ग्रस्त लोगों के लिए मुक्ति कैसे होगी यह कहो।

इत्यगस्त्यसंहितायां शिवपार्वत्युपाख्यानम् नाम प्रथमोध्यायः।।1।।

---

1. घ. विष्णुस्तान्येव पाति वै।

अथ द्वितीयोऽध्यायः

पार्वत्युवाच।

कमुपास्य लभेन्मुक्तिं क्रियया च कया प्रभो।
मुमुक्षोः पुनरावृत्तिदुर्लताभयभञ्जन[1]।।1।।

हे शंकर! मोक्षार्थियों के लिए पुनर्जन्मरूपी दुष्टलता के भय का नाश करनेवाले! हे प्रभो! हे संसार का संहार करनेवाले! किस देवता की उपासना और कैसा कर्म करने से मुक्ति मिलेगी?

ईश्वर उवाच

शृणु देवि महाभागे रहस्यं कथयाम्यहम्।
यज्ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात्।।2।।

ईश्वर बोले– हे देवि, मैं उस रहस्य को बतला रहा हूँ, जिसे जान लेने पर प्राणी संसार के बन्धन से मुक्त हो जाता है।

अपाणिपादो जवनो ग्रहीतापीक्ष्यतेऽप्यदृक्।
अकर्णः स शृणोत्येतच्छब्दरूपं[2] परं महः।।3।।
वेत्ति वेद्यं स सर्वज्ञानवेद्यो विद्यते प्रभुः।[3]
स महापुरुषः पुंसां स्त्रीणां पुंव्यक्तिलक्षणः ।।4।।

वे महापुरुष परमेश्वर विना पैर के भी गतिशील हैं, विना हाथ के भी ग्रहण करने में समर्थ हैं, विना आँख देखते हैं और विना कान के सुनते हैं और शब्द के रूप में महान् हैं। वे सभी ज्ञातव्य विषयों को जानते हैं और वे प्रभु समग्र ज्ञान के द्वारा ज्ञेय हैं। पुरुषों में महापुरुष और स्त्रियों में पुरुष स्वरूप हैं।

स्त्रीपुन्नपुंसकाकाररहितः पुरुषोत्तमः।
सर्वेश्वरः सर्वरूप सर्वदेवमयो हरिः।।5।।

स्त्री, पुरुष और नपुंसक के आकार से रहित निराकार पुरुषोत्तम हरि सबके स्वामी हैं, सभी रूपों में हैं तथा सभी देवताओं के रूप में हैं।

सत्त्वज्ञानमयोऽनन्तोऽनादिरानन्द उच्यते।
अजः स्मरणमात्रेण जन्मादिक्लेशभञ्जनः।।6।।
तस्यात्मधीश्च सर्वेषां पुनरावृत्तिकर्त्तनी।

1. क. एवं ख. पुरावृत्तिं दुर्लभां भवभञ्जक। 2. घ. छन्दोरूपे।3. घ. वित्ति वेद्यं स सर्वज्ञो नावेद्यं विद्यते प्रभोः।

सत्त्व-स्वरूप, ज्ञान-स्वरूप, अनन्त, अनादि, आनन्दमय तथा अजन्मा कहे जाते हैं तथा केवल स्मरण करने से जन्म आदि के कारण उत्पन्न कष्ट को दूर करते हैं। उनमें जो ध्यान लगाते हैं उनकी बुद्धि इस संसार में पुनर्जन्म को काटनेवाली कैंची बन जाती है।

नियमेनैव वर्णानां स्वाश्रमोक्तेन स प्रभुः।।7।।
ध्येयः संसारनाशाय[1] न चैवावर्तते पुनः।

सभी वर्णों के अपने अपने आश्रमों के अनुरूप बने नियमों के अनुरूप ध्यान किये गये वे प्रभु पुनः संसार में जन्मग्रहण के नाशक हैं। वह भक्त इस संसार में पुनः उत्पन्न नहीं होता।

स्वाश्रमोक्तं परित्यज्य य आत्मानमुपासते।।8।।
तद्रूपेण ततो देवि मुच्यते भवबन्धनात्।

हे देवि! अपने आश्रम के लिए कथित विधान को छोड़कर अर्थात् संन्यास लेकर जो आत्मा की उपासना करते हैं, वे उसी रूप में इस संसार के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं।

श्रुतिस्मृतिपुराणेषु यो यो नियम उच्यते।।9।।
यस्य यस्याश्रमन्यायो न मोक्तव्यो मुमुक्षुभिः।
अतो नियममादृत्य कुर्याद् ध्यानमनन्यधीः।।10।।

वेद, स्मृति एवं पुराणों में जो जो नियम बतलाये गये हैं तथा जिसका जो आश्रम है, उस आश्रम के अनुरूप जो नियम बनाये हैं, मोक्षार्थियों को उन नियमों का त्याग नहीं करना चाहिए। नियमों के अनुसार एकचित्त होकर प्रभु का ध्यान करें।

एतच्चराचरं विश्वं स्वप्नप्रत्ययवत्सुधीः।
मिथ्यादृग्व्यतिरिक्तं यद् दृश्यतेद्धा तथा प्रिये।।11।।
दृग्रूपेणात्मना ज्ञानं सत्यानन्दात्मनः स्वयम्।
एकाकी जितचित्तात्मा चिन्तयेत् तदनन्यधीः।।12।।
सोऽहमित्यात्मनात्मानं त्वाज्ञानपरिकल्पितम्।
एतत् स्वव्यतिरिक्तं यद्यतः स्वेनैव कल्पते।।13।।
न पारमार्थिकं देवि यद्यद् बालो हि कल्पयेत्।।
बालाज्ञयोर्वा को भेदः कल्पेते न तु चक्षुषा।।14।।

1. क. संसृतिनाशाय।

विद्वान् इस चराचर जगत् को स्वप्न के ज्ञान के समान मानते हैं। यह संसार दिखाई पड़ता है, अतः मिथ्या है। कुछलोग इसे मिथ्यादृष्टि से भिन्न अर्थात् वास्तविक मानते हैं। आत्मदृष्टि से ज्ञान को सत्य रूप और आनन्द स्वरूप समझते हुए स्वयं साधक एकाकी होकर चित्त और आत्मा को जीतकर उस ज्ञानमय ब्रह्म का चिन्तन करे कि 'वह ब्रह्म मैं हूँ '(सोऽहम्)। किन्तु मनुष्य अपनी अज्ञानता के कारण इस संसार को स्वप्न से भिन्न वास्तविक मानता है और उसी के अनुसार चलता है। बच्चे जो जो कल्पना करते हैं, वे परम तत्त्व (वास्तविक) नहीं हैं, तब बच्चे और अज्ञानियों में भेद भी कहाँ है? वे दोनों तत्त्वचक्षु से अवधारण नहीं करते हैं।

[1]अयं पन्थाः पुराणः स्यादनुप्राप्तः पुरातनः।
अध्यात्मविद्भिरर्चातो ज्ञापितः स परः स्मृतः।।15।।

ब्रह्मज्ञान का यह प्राचीन मार्ग है, जो परम्परा से परम्परा के द्वारा प्राप्त है। अध्यात्मज्ञानियों ने देवता कीअर्चना के द्वारा इसे लोगों को समझाया है, अतः वह परम तत्त्व है।

आब्रह्मशुद्धवंश्यानां मातापित्रोः कुले च ये।
स्त्रियो वाऽव्यभिचारिण्यः पुरुषाश्चैव धार्मिकाः।।16।।

जो ब्रह्म से लेकर शुद्ध वंशवाले कुल में उत्पन्न माता-पिता से उत्पन्न पुरुष हैं तथा पतिव्रता स्त्रियाँ हैं, वे धार्मिक हैं।

यज्ञाश्च वेदाध्ययनमेधेते प्रतिपूरुषम्।
पूज्यन्तेऽतिथयो यत्र गुरुशिष्यपरम्परा।।17।।
स्वप्नेऽपि चलनं नैव[2] स्त्रीष्वपि ब्रह्मचारिषु।
नियमोऽप्याश्रमस्थेषु कदाचिदपि भामिनि[3]।।18।।

यज्ञ और वेद का अध्ययन ये दोनों प्रति व्यक्ति में वृद्धि प्राप्त करते हैं। जहाँ गुरु-शिष्य की परम्परा और अतिथियों की पूजा होती है। उन आश्रमों में स्थित स्त्रियों और ब्रह्मचारियों के नियमों में स्वप्न में भी विचलन नहीं होता।

---

1. क. यहाँ से छह चरण अनुपलब्ध। 2. घ. स्वल्पोऽपि स्खलते नैव।3. घ. कदाचिन्न विमुच्यते।

तत्तत्कालेषु[1] दानं हि तदर्थिभ्यः प्रदीयते।
येषु वंशेषु सर्वेषां तेषामेव प्रकाशते।।19।।
ब्रह्म ब्रह्मविदा देवि गुरुशिष्योक्तिशिक्षया।

हे देवि! गुरु और शिष्य द्वारा किए गये उपदेश से जिन वंशों में विहित अवसरों पर प्रार्थियों को दान किए जाते हैं उन वंशों के ब्रह्मज्ञानी के द्वारा ब्रह्म प्रकाशित होते हैं।

अयमेव परं ब्रह्म नान्यत्किञ्चिन्न विद्यते।।20।।
इदमेव परं ब्रह्म ततोऽन्यं नास्ति किंचन।
तदेतदखिलं ब्रह्म सत्यं सत्यं प्रकाशते।।21।।

एक परम ब्रह्म स्वयं है, इससे अतिरिक्त कुछ भी नहीं है, यह समग्र ब्रह्माण्ड सत्य स्वरूप है, जो निश्चय ही प्रकाशवान् है।

जन्मकोटिसहस्रेषु प्रक्षीणाशेषदुःकृतैः।
कैश्चिदेव नियम्यासूनपरोक्षं निरीक्ष्यते।।22।।
सुखामृतरसास्वादसत्यज्ञानैकरूपता ।
भागाश्रयेण विदुषा स्वयमेवानुभूयते।।23।।
अहो पुण्यमहो धर्म्यं नातः परतरं क्वचित्।
अकृत्येषु च सर्वेषु प्रायश्चित्तमिदं परम्।।24।।

सैकड़ो करोड़ जन्मों की तपस्या से जिन्होंने अपने सभी दुष्कर्म के फलों का नाश कर लिया है, वह कोई कोई प्राणवायु को नियंत्रित कर प्रत्यक्ष रूप में ब्रह्म का साक्षात्कार करते हैं। सुख, अमृत रस का आस्वादन और वास्तविक ज्ञान इन तीनों भेदों को एक रूप में अद्वैत की भावना का आश्रय लेकर विद्वान् स्वयं अनुभव करते हैं। अहो! यह पुण्य है, यह धर्म का फल है, इससे भिन्न कुछ भी नहीं सभी दुष्कर्मों में यही परम प्रायश्चित्त है।

इत्यगस्त्यसंहितायां परमेश्वरस्वरूपाख्यानम् नाम
द्वितीयोऽध्यायः।

---

1. घ. स्व स्वकालेषु।

अथ तृतीयोऽध्यायः

पार्वत्युवाच

सर्वज्ञ सर्वलोकेश सर्वदुःखनिषूदन।
सर्वेषां सुगमः[1] पन्थाः को मे वद दयानिधे।।1।।

पार्वती बोलीं– हे सभी लोकों के स्वामी! सबके दुःखों का निवारण करने वाले हे दयानिधि! मोक्ष पाने के लिए ऐसा उपाय बतलायें, जो सबके लिए आसान हो।

ईश्वर उवाच

शृणुष्वावहिता देवि यदेतत्प्रतिपाद्यते।
सर्वेश्वरः सर्वमयः सर्वभूतहिते रतः।।2।।
सर्वेषामुपकाराय साकारोऽभून्निराकृतिः।

हे देवि! मैं जो कह रहा हूँ उसे ध्यानपूर्वक सुनो। निराकार प्रभु जो सबके ईश्वर हैं, सभी रूपों में हैं तथा सभी प्राणियों की भलाई में लगे रहते हैं, सबके उपकार के लिए आकार ग्रहण कर अवतार लेते हैं।

स भक्तवत्सलो लोके संसारीव व्यचेष्टत।।3।।
भक्तानुकम्पया देवो दुःखं सुखमिवान्वभूत्।

भक्तवत्सल भगवान् इस संसार में संसारी प्राणी के समान क्रियाएँ करते हैं और भक्त पर अनुकम्पा के कारण वे प्रभु दुःखों को सुख के समान अनुभव करते हैं।

यदा यदा च भक्तानां भयमुत्पद्यते तदा।।4।।
तत्तद्भक्तस्य चिन्तायै तत्तद्रूपो व्यजायत।

जब जब भक्तों पर किसी प्रकार का भय उपस्थित होता है, तब उन उन भक्तों की चिन्ता करते हुए उसी रूप में अवतार लेते हैं।

मत्स्यकूर्मवराहादिरूपेण परमार्थवित्[2]।।5।।
तत्तत्कालेषु संभूय सर्वेषामप्युपाकरोत्।

मत्स्य, कूर्म, वराह आदि रूप ग्रहण कर परोपकार करनेवाले वे महाप्रभु उन उन कालों में उत्पन्न होकर सबकी भलाई करते हैं।

---

1. घ. निगमः। 2. घ. परमात्मदृक्।

साधूनामाश्रमस्थानां भक्तानां भक्तवत्सलः।।6।।
उपकर्ता निराकारस्तदाकारेण जायते।

साधुओं तथा चारों आश्रमों - ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ एवं संन्यास के भक्तों का उपकार करनेवाले वे भक्तवत्सल भगवान् तब आकार ग्रहण करते हैं।

अजोऽयं जायतेऽनन्तः सान्तोऽभूद् भूतभावनः।।7।।
कदाचिदवतीर्य्याऽयं मन्दभक्तानुकम्पया।

ये अजन्मा हैं फिर भी जन्म लेते हैं, अनन्त होकर भी मरणशील होने की लीला करते हैं, प्राणियों की सृष्टि करते हैं, वे किसी समय हतभाग्य भक्तों पर अनुकम्पा करने के लिए अवतार लेते हैं।

क्षीराब्धेः देवदेवेशो लक्ष्म्या नारायणो भुवि।।8।।
सशेषः शंखचक्राभ्यां देवैर्ब्रह्मादिभिः सह।
त्रेतायुगे दाशरथिर्भूत्वा नारायणो बभौ।।9।।

क्षीरसागर में लक्ष्मी के साथ शयन करनेवाले वे देवेश शेषनाग, शंख, चक्र और ब्रह्मा आदि देवताओं के साथ त्रेता युग में इस संसार में दशरथ के पुत्र के रूप में अवतरित होकर विराजमान हुए।।

शेषोऽभूल्लक्ष्मणो लक्ष्मीः शंखचक्रे च जानकी।
जातौ भरतशत्रुघ्नौ देवाः सर्वेऽपि वानराः।।10।।

शेषनाग के अवतार लक्ष्मण हुए, लक्ष्मी जनकनन्दिनी जानकी के रूप में अवतरित हुईं। शंख और चक्र के अवतार भरत और शत्रुघ्न हुए तथा सभी देवता वानर के रूप में अवतरित हुए।

बभूवुरेवं सर्वेऽपि देवर्षिभयशान्तये।
तत्र नारायणो देवो श्रीराम इति विश्रुतः।।11
सर्वलोकोपकाराय भूमौ सौर्येष्ववातरत्।[1]

इस प्रकार सभी देवों और ऋषियों के भय को दूर करने के लिए भगवान् नारायण धराधाम पर अवतरित हुए, जिनमें सभी लोकों के उपकार के लिए सूर्यवंशियों के बीच श्रीराम के नाम से प्रख्यात होकर अवतरित हुए।

---

1. घ. सोऽयमवातरत्।

तपः कुर्वन्ति तं केचिदपरोक्षं निरीक्षितुम्।।
पञ्चाग्निमध्ये ग्रीष्मेषु वर्षासु दिवि शेरते।।12

कुछ लोग उस भगवान् श्रीराम के प्रत्यक्ष दर्शन के लिए तपस्या करते हैं। कुछ तपस्वी ग्रीष्मकाल में पाँच अग्नियों के बीच (चारों दिशाओं में अग्नि तथा ऊपर प्रचण्ड सूर्य- ये पाँच अग्नियाँ कहलाती है।) वर्षा ऋतु में खुले आकाश के नीचे तपस्या करते हैं।

शिशिरेषु जलेष्वेवं तपः केचन तेपिरे।
केचिद् भिक्षां पर्यटन्ति कृत्वा धारणपारणम्[1]।।13।।
शोषयन्ति पुनर्देहमपरे कृच्छ्रचर्यया।

इसी प्रकार जाड़े के दिनों में जल में खड़ा होकर कुछ लोग तपस्या करते हैं, कुछ लोग भिक्षाटन कर जो मिले उसी से भोजन करने का व्रत करते हुए तथा अन्य लोग न्यूनतम भोजन करने का व्रत करते हुए शरीर को सुखाते हैं।

कालश्चान्द्रायणैरेव केश्चित् पार्वति नीयते।।14।।
शाकमेवापरे देहमश्नन्तः शोषयत्यहो।

हे पार्वती! कुछ लोग चान्द्रायण व्रत कर समय व्यतीत करते हैं तथा कुछ तो केवल साग खाते हुए अपने शरीर को सुखा डालते हैं।

इह केचिद् वरारोहे नक्तायाचितभोजना।।15।।
चिन्तयन्ति चिरं कालं वनेष्वेकाकिनो[2] हृदि।

हे पार्वती! कुछ लोग इस संसार में रात्रि में एक बार विना माँगे जो मिल जाये वही खाकर, वन में अकेले रहकर चिरकाल तक अपने हृदय में भगवान् का चिन्तन करते रहते हैं।

अनन्यमनसः शश्वद् गणयन्तोऽक्षमालया।।16।।
जपतो रामरामेति सुखामृतनिधौ मनः।
प्रविलीयामृतीभूय सुखं तिष्ठन्ति केचन।।17।।

एकाग्रभाव से रुद्राक्ष की माला पर गिनते हुए राम, राम का जप लगातार करते हुए सुख रूपी अमृत के भाण्डार में मन को एकाकार कर अमरत्व पाकर सुख से रहते हैं।

---

1. घ. धारणपूरणे। 2. घ. बिल्ववनेष्वेकाकिनो।

मत्पश्चिमाभिमुख्येन केचित्प्रासादकोटरे।
भावयन्ति चिरं देवि मम तत्प्राप्तये बुधाः।।18।।
परिचर्य्यापराः केचित्प्रासादेष्वेव शेरते।।

कुछ समझदार लोग मुझसे पश्चिम में अभिमुख बैठकर अर्थात् पूजा-स्थल के पश्चिम में पूर्वाभिमुख होकर अपने घर में हीं रहते हुए मेरे उस स्वरूप की प्राप्ति के लिए उनकी परिचर्या (सेवा) करते हुए घर में ही जीवन व्यतीत करते हैं।

[1]मनुष्यस्य चिरं देवि भगवत्प्राप्तये बुधाः।।19।।
मनुष्यमिव तं द्रष्टुं व्यवहर्तुं च बन्धुवत्।
अध्यापनाय विद्यानां योद्धुमप्यपरे तपः।।20।।
चक्रिरे वामनो भूत्वा केचिद्रोषेण तेपिरे[2]।
क्षीराहाराः परे चाब्धेस्तीरेष्वेव निषेविरे।।21।।
चञ्चलाक्ष्यथ केषांचित्तपः स्मर्तुं न शक्यते।
किं करिष्यति देवोऽयं एवं दृष्ट्वा सुदारुणम्।।22।।
तपस्तपस्विनामेतत्कृपयानुग्रहादिह ।
मानुषीभूय सर्वेषां भक्तानां भक्तवत्सलः।।23।।
ध्यानमात्रेण देवेशि महापातकनाशकृत्।
कृतेन स्मरणाभ्यां च हत्याकोटिनिवारणः।।24।।

मनुष्यों की कालगणना के अनुसार चिरकाल तक भगवान् को पाने के लिए, उन्हें मानवाकार में देखने और सखा की तरह उनके साथ व्यवहार करने के लिए, उन्हें सभी विद्या पढ़ाने के लिए तथा उनके साथ युद्ध भी करने के लिए, कुछ कायर भगवान् विष्णु के शत्रु राक्षस बनकर आक्रोश के साथ तप करने लगे। वे केवल दूध पीकर सागर के उस पार ही सेवा करने लगे। हे चंचल आँखोंवाली पार्वती! ऐसे किसी ऐरे-गैरे की तपस्या तो स्मरण नहीं की जा सकती है, किन्तु ये देव भी क्या करेंगे? इस दारुण तपस्या को देखकर कृपापूर्वक अनुग्रह कर इस संसार में मनुष्य होकर वे सभी भक्तों के लिए भक्तवत्सल भगवान् बने। हे देवी! भगवान् तो केवल स्मरण करने से ही महान् पापों का नाश करते हैं और कर्म और स्मरण दोनों करने से तो कोटि कोटि हत्याओं के भी महापाप का निवारण करते हैं।

रामरामेति रामेति ये वदन्त्यपि पापिनः।
पापकोटिसहस्रेभ्यस्तानुद्धरति नान्यथा।।25।।

1. घ. दो चरण अनुपलब्ध। 2. घ. केचिद्रोष्ठीषु तेपिरे।

जो पापी राम, राम, राम इस प्रकार उच्चारण करते हैं उन्हें भगवान् करोड़ों पापों से उद्धार करते हैं, यह निष्फल नहीं होता है।

उग्रेण तपसा तेषां सोऽभूदेवं दयानिधिः।
यतो वाचो निवर्त्तन्ते मनोभिः सह योगिनाम्।।26।।
भागधेयेन सर्वेषां स प्रत्यक्षमजायत।
अहोभाग्यातिरेकेण मनुष्योऽपि व्यवाहरत्।।27।।
तपो ददाति सौभाग्यं तपो विद्यां प्रयच्छति।
तपसा दुर्ल्लभं कञ्चिन्नास्ति भामिनि देहिनाम्।।28।।

उनकी उग्र तपस्या से वे पृथ्वी पर इस प्रकार उत्पन्न हुए। योगियों के मन के साथ वाणी भी जहाँ जाकर लौट जाती है, वे परब्रह्म परमेश्वर सबके भाग्य से प्रत्यक्ष अवतरित हुए। भक्तों के अहोभाग्य में वृद्धि होने से मनुष्य ने भी उनके साथ देवता जैसा व्यवहार किया। हे देवी! पार्वती! तपस्या से सौभाग्य और विद्या की प्राप्ति होती है। मनुष्यों के लिए ऐसा कुछ भी नहीं है, जो तपस्या से नहीं मिले।

अवाप्तसर्वकामोऽयं वाङ्मनोऽगोचरो विभुः।
मनुष्य इव मानुष्यमाधाय भुवि मोदते।।29।।
अहो कृपातिरेकेण सर्वत्र समुपैति वै।
एतस्मादपि किं लाभादधिकं गजगामिनि।।30।।
तपो धनं तपो भाग्यं तपः सर्वत्र सर्वदम्।
अतस्तपस्विनां देवि दासत्वमपि दुर्लभम्।।31।।

सभी प्रकार की कामनाओं को प्राप्त कर लेनेवाले ये प्रभु, जो वाणी और मन से भी अप्रत्यक्ष हैं, वे मानव का रूप धारण कर मनुष्य के समान इस संसार में प्रसन्न हैं। अहोभाग्य है कि अत्यधिक कृपा करने के कारण वे सभी जगह पहुँच जाते हैं। हे गजगामिनी पार्वती! इससे अधिक लाभ और क्या हो सकता है? अतः हे देवि! तपस्या धन है, तप ही भाग्य है, तप से ही हर स्थानों पर सब कुछ प्राप्त हो जाते हैं। अतः हे देवी पार्वती! जो तपस्या करते हैं, उनके लिए दासता दुर्लभ है; क्योंकि तपस्वी देवस्वरूप हो जाते हैं।

इत्यगस्त्यसंहितायां रामावतारोपक्रमम् नाम तृतीयोऽध्यायः।।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

पार्वत्युवाच

योगीन्द्रं वन्द्यचरणद्वन्द्वानन्दैकलक्षण।
कथमेनमुपास्यैव मुक्तिं सर्वेऽपि भेजिरे।।1।।
तदेतद् ब्रूहि देवेश यद्यस्ति करुणा मयि।

पार्वती बोलीं– हे देवेश! आपके चरणकमल की वन्दना सभी करते हैं और आप एकमात्र आनन्दस्वरूप हैं। यदि मेरे ऊपर करुणा हो, तो कृपा कर यह बतलाइये कि योगियों के राजा श्रीराम की कैसी उपासना कर सब लोगों ने मुक्ति पायी थी।

ईश्वर उवाच

हैरण्यगर्भसिद्धान्तरहस्यमनघे शृणु।।2।।
यज्ज्ञात्वा मुच्यते मोहाद् दौर्भाग्यव्याधिसाध्वसात्।
भद्रे तदभिधास्यामि तत्सारग्राहिणी भव।।3।।

भगवान् शिव ने कहा– हे निष्कलुष देवि! हिरण्यगर्भ भगवान् विष्णु का जो सिद्धान्त है, उसका रहस्य सुनो। इसे जानकर दुर्भाग्य और व्याधियों को मिटाते हुए लोग संसार के मोह का भी त्याग कर देते हैं। हे भद्रे! मैं वह रहस्य बतला रहा हूँ; उसके मूलतत्त्व को ग्रहण करो।

पूर्वं ब्रह्मा तपस्तेपे कल्पकोटिशतत्रयम्।
मुनीन्द्रैर्बहुभिः सार्द्धं दुर्द्धर्षानशनव्रतम्।।4।।

प्राचीन काल में ब्रह्मा ने तीन सौ करोड़ वर्ष तक निराहार रहकर बहुत सारे मुनिश्रेष्ठ के साथ तपस्या की।

पुरस्कृत्याग्निमध्यस्थस्तदाराधनतत्परः।
आदरातिशयेनास्य नैरन्तर्य्येर्चनादिना।।5।।

अग्नि के मध्य में रहकर और विष्णु को समक्ष में रखकर आदरपूर्वक लगातार पूजा-अर्चना करते हुए वे आराधना करते रहे।

चिराय देवदेवोऽपि प्रत्यक्षमभवत्तदा।
किञ्च पुण्यातिरेकेण सर्वेषां तस्य च प्रिये।।6।।

बहुत दिनों के बाद पुण्य की वृद्धि के कारण ब्रह्मा तथा अन्य सभी मुनियों के सामने देवों के स्वामी भगवान् विष्णु प्रकट हुए।

नवनीलाम्बुदश्यामः सर्वाभरणभूषितः।
शङ्खचक्रगदापद्मजटामुकुटशोभितः ।।7।।

भगवान् नवीन एवं नीले मेघ के समान श्यामल वर्ण के थे, उनके शरीर पर सभी गहने शोभित हो रहे थे तथा शंख, चक्र गदा, कमल, जटा और मुकुट से वे सुशोभित थे।

किरीटहारकेयूररत्नकुण्डलमण्डितः ।
संतप्तकाञ्चनप्रख्यपीतवासोयुगावृतः ।।8।।

मुकुट, हार, बाजूबन्द, रत्न के कुण्डल से वे विभूषित थे और तपे हुए सोने के समान पीले रंग के जोड़े वस्त्र उनके शरीर पर थे।

तेजोमयः सोमसूर्य्यविद्युदुल्काग्निकोटयः ।
मिलित्वाविर्भवन्तीव प्रादुरासीत्पुरः प्रभुः।।9।।

भगवान् इस प्रकार सामने प्रकट हुए जैसे करोडों चन्द्रमा, सूर्य, बिजली, उल्का और अग्नि एक साथ मिलकर प्रकट हुए हों।

स्तम्भीभूय तदा ब्रह्मा क्षणं तस्थौ विमोहितः।
तुष्टाव मुनिभिः सार्द्धं प्रणम्य च पुनः पुनः।। 10।।

कुछ देर तक तो ब्रह्मा घबराकर खम्भे की तरह ठिठक गये। पुनः मुनियों के साथ बार बार उन्हें प्रणाम कर स्तुति करने लगे।

धन्योऽस्मि कृतकृत्योस्मि कृतार्थोस्मीह बन्धुभिः।
प्रसन्नोऽसीह भगवन् जीवितं सफलं मम।।11।।

हे भगवन्! आज मैं अपने बन्धुओं के साथ धन्य हो गया; आज मेरे सभी कार्य सम्पन्न हो गये। हे भगवन्! आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं, इससे मेरा जीवन सफल हो गया।

कथं स्तोष्यामि देवेश भगवन्निति चिन्तयन्।
ऋग्यजुःसामवेदैश्च शास्त्रैर्बहुभिरादरात्।।12।।
साङ्गैर्मन्वादिभिर्धर्मप्रतिपादनतत्परैः ।
तुष्टावेश्वरमभ्यर्च्य सन्तुष्टो मुनिभिः सह।।13।।

'हे देवेश! मैं कैसे आपकी स्तुति करूँगा' यह सोचते हुए मुनियों के साथ सन्तुष्ट होकर ब्रह्मा ने वेदांग सहित ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अन्य अनेक शास्त्र, मनुस्मृति आदि धर्म को बखानने वाले शास्त्रों से भगवान् की अर्चना कर उनकी स्तुति की–

त्वमेव विश्वतश्चक्षुर्विश्वतोमुख उच्यसे।
विश्वतोबाहुरेकः सन् विश्वतः स्यात्तथा परः।।14।।
जनयन् भूर्भुवर्लोकौ स्वर्लोकं सर्वशासकः।
अक्षिभ्यामपि बाहुभ्यां कर्णाभ्यां भुवनत्रयम्।।15।।
पद्भ्यां च नासिकाभ्यां[1] च सर्वं सर्वत्र पश्यसि।
समाधत्से शृणोष्येतत् सर्वं गच्छसि सर्वकृत्।।16।।
जिघ्रस्येवं न ते किञ्चिदविज्ञातं प्रभोस्त्विह।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च त्वमेव ननु केशवः।17।।
सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
पृथिव्यप्तेजसां रूपं मरुदाकाशयोरपि।।18।।
कार्यं कर्ता कृतिर्देव कारणं केवलं परम्।
अणोरणीयान् महतो महीयान् मध्यतः स्वयम्।।19।।
मध्योऽसि निर्विकल्पोऽसि कस्त्वां देवावगच्छति।

हे भगवन्! आपके नेत्र सभी दिशाओं में हैं; आपके मुख भी सभी दिशाओं में हैं तथा आपकी बाहें भी सभी ओर फैली हुई हैं, फिर भी आप संसार से परे हैं। आप दोनों आँखों, बाहुओं और कानों, पैरों और नासिकाओं से भूलोक, भुवर्लोक, और स्वर्गलोक इन तीनों को उत्पन्न कर सब पर शासन करते हैं, सभी जगहों पर सब कुछ देखते-सूँघते हैं; सब कुछ सुनकर उनका समाधान करते हैं और सारे कार्य करते हैं। हे प्रभो! ऐसा कुछ भी नहीं, जिसे आप जानते न हों। आप ही ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र हैं तथा केशव भी आप ही हैं। पुरुष रूप में आपके हजारों शिर हैं, हजारों नेत्र हैं तथा हजारों पैर हैं। हे देव!, पृथ्वी, जल, अग्नि के तथा मरुत् और आकाश स्वरूप आप हैं। आप ही करने योग्य, करनेवाले, किये गये पदार्थ तथा क्रिया के परम साधन भी आप ही हैं। हे देव! आप अणु से भी सूक्ष्म और महत् से भी महान् हैं और उनके बीच में भी आप ही हैं; आपका विकल्प कोई नहीं है; आपको भला कौन जान सकता है?'

---

1. घ. पादाभ्यां नासिकाभ्यां च।

एवमेवादिबहुस्तोत्रैस्स्तुतः स परमेश्वरः।।20।।
वैदिकैः कृपया विष्णुर्ब्रह्माणमिदमब्रवीत्।

इस प्रकार के वेदोक्त स्तोत्रों से जब ब्रह्मा ने भगवान् की स्तुति की, तब विष्णु ने ब्रह्मा से कहा–

स्तुतस्तुष्टोऽस्मि ते ब्रह्मन् उग्रेण तपसाधुना।।21।।
वृणीष्व पदमिष्टं[1] ते दास्यामि कमलोद्भव।
इत्युक्तः सोऽब्रवीत् तेन विष्णुना प्रभविष्णुना।।22।।

'हे ब्रह्मा! मैं आपकी स्तुति और उग्र तपस्या से अब सन्तुष्ट हूँ। हे कमलोद्भव! तुम्हे जो स्थान चाहिए वह माँगो; मैं तुम्हें दूँगा।' विष्णु के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर ब्रह्मा बोले।

ब्रह्मोवाच

तुष्टोऽसि यदि देवेश दास्यं मे स्वीकरिष्यसि।
अभीष्टं देव देवेश यद्यस्ति करुणा मयि।।23।।

ब्रह्माजी बोले– हे देवेश! यदि आप सन्तुष्ट हैं और मेरे ऊपर यदि आपकी करुणा है, तो मेरी इस दासता को स्वीकार करें, यह मैं चाहता हूँ।।

असौभाग्येन दारिद्र्यदुखेनाहं सुदुःखितः।।
एतेऽपि मुनयो देव माययात्यन्तदुःखिताः।।24।।

हे देव! मैं सुन्दर भाग्य से हीन तथा दरिद्रता के दुःख से दुःखी हूँ। ये मुनिगण भी माया के फेर में अत्यन्त दुःखी हो रहे हैं।

प्रतिभाति च दैवेन[2] सर्वमस्माकमीदृशम्।
किं करिष्यामि देवेश ब्रूहि मे पुरुषोत्तम।।25।।

हे पुरुषोत्तम! हमलोगों का सबकुछ इसी प्रकार से भाग्य के द्वारा प्रेरित प्रतीत हो रहा है। ऐसी स्थिति में मैं क्या करूँ यह कहें।

कामक्रोधादिभिर्दुःखैर्दुष्टाः सर्वापि मम प्रजाः।
पूर्वार्जितैर्विशेषेण न कश्चिदवशिष्यते।।26।।

पूर्वजन्म में अर्जित कर्म से तथा काम, क्रोध आदि के दुःख से मेरी सारी प्रजा दोषग्रस्त हो गयी है। ऐसा कोई नहीं है, जो इन दोषों से अछूता हो।

---

1. क. यदभीष्टं।2.ख. वेदेन।

को वोपायो मनुष्याणां भक्तानां भक्तवत्सल।
एतच्छरीरपातान्ते नः परं मुक्तिसिद्धये।।27।।

हे भक्तवत्सल भगवान्! मनुष्यों और भक्तों के लिए ऐसा कौन सा उपाय है, जिससे हमें इस शरीर का अन्त होने पर मुक्ति मिले।

इहाप्यस्माकमैश्वर्य्यं वै दुष्टेष्टार्थसिद्धये[1]।
एवमुक्तः स देवोऽस्मै भुक्तिमुक्तिप्रसिद्धये।।28।।
किञ्चिद् विचार्य भगवान्[2] षडक्षरमुपादिशत्।

स्वर्ग में भी हम देवों का ऐश्वर्य दोषपूर्ण इच्छित वस्तुओं की सिद्धि के लिए हैं।" ऐसा कहने पर भगवान् ने कुछ सोचकर भोग और मोक्ष की सिद्धि के लिए छह अक्षरों वाले मन्त्र का उपदेश किया।

एकैकं वर्णविन्यासं क्रमाच्चाङ्गानि षट् पुनः[3]।।29।।
तद्विधिं विधये प्रादात् पञ्चमन्त्राक्षराणि च।
रहस्यं देवदेवोऽपि तं मिथः समबोधयत्।।30।।

हे मुनि! भगवान् ने भी उस षडक्षर मन्त्र एक एक कर वर्णविन्यास, क्रमशः न्यास आदि छह अङ्ग उसकी विधि तथा रहस्य बतला दिया तथा पंचाक्षर मन्त्र का भी उपदेश किया।

तस्य तत्प्राप्तिमात्रेण तदानीमेव तत्फलम्।
सर्वाधिपत्यं सर्वज्ञं भावोऽप्यस्याभवन् तदा।।31।।

ब्रह्मा ने भी ज्यों ही उसे प्राप्त किया, उस मन्त्र का फल तत्काल ही मिल गया। ब्रह्मा उसी क्षण सबके स्वामी बन गये तथा सारा ज्ञान उन्हें मिल गया।

किं चास्य भगवत्त्वं च यदिष्टं तदभूदपि।
सर्वेश्वरप्रसादेन तपसा किं न लभ्यते।।32।।

इतना ही नहीं, ब्रह्मा जो चाह रहे थे, वह उन्हें मिल गया; वे भगवान् भी हो गये। भला सबके स्वामी भगवान् विष्णु की कृपा तथा तपस्या से क्या कुछ नहीं मिल जाता!

मुनीनामपि सर्वेषां तदा ब्रह्मा तदाज्ञया।
उपादिदेश तत्सर्वं ततस्तु विष्णुरब्रवीत्।।33।।

---

1. घ. वैदुष्येष्टार्थसिद्धये। 2. घ. कृपया। 3. क. षण्मुने।

तब भगवान् विष्णु की आज्ञा से ब्रह्मा ने सभी मुनियों को इस मन्त्र का उपदेश किया। तब विष्णु बोले–

ऋषिर्भवास्य मन्त्रस्य त्वं ब्रह्मन् सर्वमन्त्रवित्।
रामोऽहं देवता छन्दो गायत्री छन्दसां परा।।34।।

हे ब्रह्मा! आप मन्त्रों के ज्ञाता हैं, अतः इस मन्त्र के ऋषि आप हों। मैं राम इस मन्त्र का देवता हूँ तथा छन्दों में श्रेष्ठ गायत्री इस मन्त्र का छन्द होगा।

मान्तो[1] यान्तो भवेद्बीजं सर्वमाद्यफलप्रदम्।[2]
नमः शक्तितयोद्दिष्टो नमोऽन्तो मन्त्रनायकः।।35।।

मकार (राम्) एवं यकार (रामाय) से अन्त होनेवाले इसके बीज-मन्त्र हों तथा 'नमः' इस मन्त्र की शक्ति हो। इस प्रकार 'नमः' से अन्त होनेवाला यह मन्त्रों में नायक बने।

रामाय मध्यमो ब्रह्मन् तस्मै सर्वं निवेदयेत्।
इह भुक्तिश्च मुक्तिश्च देहान्ते संभविष्यति।।36।।

हे ब्रह्मा! इस मन्त्र के बीच में 'रामाय' यह पद रहेगा और उसी राम को यह मन्त्र निवेदित करें। इससे संसार में भोग तथा देहान्त होने पर मोक्ष मिलेगा।

यदन्यदप्यभीष्टं स्यात् तत्प्रसादात् प्रजायते।
अनुतिष्ठादरेणैव निरन्तरमनन्यधीः।।37।।

इसके अतिरिक्त भी यदि कोई इच्छा हो, तो श्रीराम की कृपा से पूरी होगी। एकाग्रचित्त होकर लगातार इस मन्त्र का अनुष्ठान करें।

चिरं मद्गतचित्तस्तु मामेवाराधयेच्चिरम्।
मामेव मनसा ध्यायन् मामेवैष्यसि नान्यथा।।38।।

बहुत दिनों तक मुझमें मन लगाकर, मेरा ही ध्यान करते हुए जो मेरी उपासना करेंगे, वे मुझे ही पा लेंगे, इसमें सन्देह नहीं।

तत्र तदेतद् विस्तार्य्य शिष्येभ्यो ब्रूहि गौरवम्।
इत्युक्त्वान्तर्दधे देवस्तत्रैव कमलेक्षणः।।39।।

हे ब्रह्मा! संसार में इसीका विस्तार कर अपने शिष्यों से इस मन्त्र की गरिमा का बखान करें।" ऐसा कहकर कमलनयन भगवान् विष्णु वहीं अन्तर्धान हो गये।

---

1. घ. सान्तो। 2. ख. भवेद्बीजमाद्यमाद्यफलप्रदम्।

प्रजापतिश्च भगवान् मुनिभिः सार्द्धमन्वहम्।
अन्वतिष्ठद् विधानेन निक्षिप्याज्ञां सिरस्यथ।।40।।

तब भगवान् प्रजापति ब्रह्मा ने विष्णु की आज्ञा सिर पर चढ़ाकर मुनियों के साथ विधानपूर्वक इस मन्त्र का अनुष्ठान किया।

ब्रह्मा तदानीं सर्वेषामुपदेष्टा बभूव ह।
आर्ये तवापि तेनैव सर्वाभीष्टं भविष्यति।।41।।

हे देवी पार्वती! तब ब्रह्मा सबके लिए इस मन्त्र के उपदेशक हुए। इसी मन्त्र से तुम्हारी भी सभी कामनाओं की पूर्ति होगी।

इत्यगस्त्यसंहितायां परमरहस्ये ब्रह्मणा षडक्षरमन्त्रग्रहणम् नाम चतुर्थोऽध्यायः।।4।।

अथ पञ्चमोऽध्यायः

सुतीक्ष्ण उवाच

पुरातन पुराणज्ञ सर्वाख्यानार्थवित्तम।
ततः किमकरोद् विप्रश्रेष्ठागस्त्याम्बिका तदा।।2।।
ईश्वरः केन रूपेण तामेतदवबोधयत्[1]।

सुतीक्ष्ण बोले– हे विप्रों में श्रेष्ठ अगस्त्य! आप तो प्राचीन काल से हैं, पुराणों के ज्ञाता हैं, सभी कथाओं के प्रयोजनों को आप भलीभाँति जानते हैं। भगवान् शंकर ने इसके बाद किस प्रकार पार्वती को समझाया, यह कहें।

अगस्त्य उवाच

तदादि हृदये रामं निधाय कमलेक्षणा।।3।।
मुक्तये निश्चिनोति स्म तमनन्यपरायणा।

अगस्त्य ने कहा– इस दिन से पार्वती श्रीराम में एकाग्रचित्त होकर अपने हृदय में बसाकर मुक्ति के लिए मन बनाने लगी।

हैरण्यगर्भसिद्धान्तरहस्यश्रवणात् परम्।।4।।
कामादिग्रस्तता तस्याश्चिरमेव न्यवर्तत[1]।

1. घ. तामेव तदबोधयत्।

पार्वती के मन में काम आदि जो घर कर गये थे, हिरण्यगर्भ के सिद्धान्त का रहस्य सुनने के बाद वे सब मिट गये।

ईश्वरस्तां प्रियां सम्यज्ज्ञानमात्रेच्छया स्थिताम्।।5।।

न्यवर्त्तत ततो ज्ञात्वा संसारोच्छित्तिशङ्कया।

संसार के विनाश की आशंका से भगवान् शिव ने केवल ज्ञान की इच्छा रखनेवाली पार्वती को रोक दिया।

तामब्रवीच्च भगवानीश्वरः सर्वरूपधृक्।।6।।

मूलप्रकृतिरार्य्ये त्वं पुरुषोऽहं पुरातनः।

सभी रूपों को धारण करनेवाले भगवान् शिव ने कहा कि हे आर्ये! मैं पुरातन पुरुष हूँ और तुम मूल प्रकृति हो।

कारणं जगदुत्पत्तेरावान्तदऽनवेक्षणम् ।।7।।

कुर्वहे स्यात्तदुच्छित्तिर्यदि किं तद्धितं तव।

कल्याणि मम किं तुल्यमावयोर्न तु तत्परम्।।8।।

हे कल्याणि! जगत् की उत्पत्ति के कारणस्वरूप हमदोनों हैं और हमदोनों ही अन्त में (प्रलय-काल में) उसकी देखभाल छोड़ देते हैं, जिससे वह विनष्ट हो जाता है। यदि हम इस संसार का विनाश कर देंगे (अर्थात् सभी प्राणियों को मोक्ष मिल जाये तो संसार कैसे चलेगा) तो इससे तुम्हारा और मेरा क्या लाभ? हमलोगों के समान या हमसे आगे भी कोई नहीं है।

कार्यं हि करणाभावे कुत्र सम्पद्यते वद।

आवयोः सम्भविष्यन्ति सतोः कल्याणि देवताः।।9।।

हे आर्ये! कारण के अभाव कार्य कैसे होगा, यह तो कहो! हम दोनों के अस्तित्व में रहने पर ही तो देवता भी उत्पन्न होंगे।

त्वत्प्रसादाददिदं सर्वं न कदाचिद् गमिष्यति।

एवं च सति किं देवि सर्वं त्यक्तुमपेक्षसे।।10।।

न युक्तमेतत् किमपि त्यक्तुं[2] देव्यधुना त्वया।

तुम्हारी ही कृपा से तो यह सब है और कभी समाप्त भी नहीं होगा। इस प्रकार क्या तुम सबकुछ छोड़ सकती हो! इसलिए हे देवी! इस समय सबकुछ छोड़ देना तुम्हारे लिए उचित नहीं है।

---

1. घ. व्यवर्तत। 2. घ. वक्तुं।

इत्युक्ता साब्रवीद्देवी नीलोत्पलनिरीक्षणा।।11।।
प्राणनाथाधुना किं मे कर्त्तव्यमिति साब्रवीत्।
इयं सद्वासना मत्तो नैवोच्छिन्ना[1] भवेत्प्रभो।।12।।
कदाचिदपि देवेश त्वं तथानुगृहाण माम्[2]।

तब इस प्रकार कही गयी पार्वती ने कहा– हे प्राणनाथ! मुझे क्या करना चाहिए, जिससे मेरे मन में आपके प्रति जो आसक्ति है, वह मुझसे कभी अलग न हो। हे देवेश! यह बतलाकर मेरे ऊपर अनुग्रह करें।

तथोक्तः सोऽब्रवीदेनां महीध्रतनयां पुनः।।13।।
श्रीरामाराधनं देवि तदर्थं[3] प्रतिवासरम्।

इस प्रकार कहने पर भगवान् शिव ने हिमालय की पुत्री पार्वती से कहा– 'हे देवि! इसलिए प्रतिदिन श्रीराम की आराधना करो।'

आराधयोपकरणैरन्यथा मा कृथाः प्रिये।।14।।
एतेनैवाभयं किञ्चिदिहामुत्र भविष्यति।
कलौ संकीर्त्तनेनैव सर्वाघौघं व्यपोहति।।15।।
आराधनेन साङ्गेन गन्धपुष्पाक्षतादिभिः।
किं वक्तव्यं प्रिये सर्वं मनसा चिन्तितं यतः।।16।।

सामग्रियों से ही आराधना करो, दूसरे प्रकार से नहीं। इसी से इस संसार में और परलोक में अभय मिलेगा; क्योंकि कलियुग में संकीर्तन और चन्दन, फूल, अक्षत आदि से आराधना करने से ही सभी प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं। हे प्रिये! जब तुमने मन में ठान ही लिया है, तो और क्या कहूँ।

एवमाराधनेनैव भवत्येव च नान्यथा।
न गृही ज्ञानमात्रेण परत्रेह च मंगलम्।।17।।
प्राप्नोति चन्द्रवदने दानहोमादिभिर्विना।

इस प्रकार की आराधना करने से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है; क्योंकि जो गृहस्थ है, वह केवल ज्ञान प्राप्त कर इस संसार में और परलोक में दान, होम आदि के विना मंगल नहीं पाता है।

गृहस्थो यदि दानानि दद्यान्न जुहुयादपि।।18।।

---

1. घ. नैवोत्सन्ना।2. घ. वै।3. घ. तदमूं।

एवमादिभिरन्यैश्च पुष्पैर्बहुभिरन्वहम्।
सम्यक् सम्पाद्य यत्नेन शक्त्या भक्त्या रघूद्वहम्।।29।।

इसलिए पुण्यमयी स्त्रियाँ और गृहस्थ जो मंगल चाहते हों, वे दान करें और मांगलिक पूजा सामग्रियों चन्दन, अगरु, कस्तूरी, कर्पूर से पूजा करें; पंचामृत से अभिषेक करें; फूलों की माला, दूर्वा, अक्षत से तथा चम्पा, तामरस (लालकमल), नीलकमल, जूही, चम्पा, चमेली, नागकेसर, करवीर, वकुल, बेल का फूल, कदम्ब, केतकी फूल, मल्लिका, अशोक, पलाश, नाग, बाण आदि सुन्दर, सुगन्धित फूलों से अर्चना करें, जिनकी पंखुरियाँ आगे की ओर हों, कोमल हों, इनसे पूजा करें। नये पल्लव, जल एवं स्थल पर उत्पन्न पत्रों से तथा इस प्रकार के अन्य पत्रों-पुष्पों से प्रतिदिन शक्ति के अनुसार सभी सामग्रियाँ जुटाकर श्रीराम की पूजा करें।

त्रिकालमेककालं वा पूजयेयुरहर्निशम्।
[1]कक्कोलैलापूगफलैस्तथाजातिफलैरपि ।
प्रत्याहृतैर्बहुविधैः पिष्टकैरिष्टसिद्धये।।30।।

दिन-रात, प्रातःकाल, मध्याह्नकाल एवं सन्ध्याकाल अथवा केवल प्रातःकाल में कक्कोल, इलायची, सुपारी, जायफल आदि अनेक प्रकार के संगृहीत साधनों से तथा चावल के पीठा से कामना की सिद्धि के लिए पूजा करें।

क्षीरनीराज्यपक्वैश्च फेनापूपवटादिभिः।
दध्यौदनान्यपानीयैः सूपादिव्यञ्जनैरपि।।31।।
[2]वटीवटोपदंशादिपदार्थैर्बहुविस्तरैः ।

दूध, जल और घी में पकाये हुए फेना, फेन की तरह बनने बाला खाद्य पदार्थ बतासा, घेबर आदि, बड़ी तथा दही, भात, अन्य पेय पदार्थ और दाल, तरकारी, रोटी, गोलाकार खाद्य पदार्थ, चटनी या आचार आदि विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थों से पूजा करें।

आरार्तिकैर्धूपदीपैः[3] षडावृत्त्योपकल्पितैः।।32।।
[4]शङ्खचक्रगदापद्मगरुडान्तोपकल्पितैः ।
बहुभिर्दीपमालाभिरर्चयेयुरहर्निशम् ।।33।।

धूप, दीप, आरती से छह बार शङ्ख, चक्र गदा, कमल, तथा गरुड़ की प्रतिकृति बनाते हुए अनेक दीप मालाओं से दिन-रात पूजा करनी चाहिए।

---

1. यह पंक्ति केवल घ. में । 2. घ. शाटीपटोपदंशादि (भोज्य पदार्थ के साथ वस्त्र अनन्वित)।3. घ. आरत्रिकै॰। 4. घ. यह पंक्ति अनुपलब्ध।

पूजयेद् विधिना नैव कः कुर्यादितदन्वहम्[1]।

गृहस्थ यदि प्रतिदिन दान न करे, होम नहीं करे और विधिपूर्वक पूजा नहीं करे, तो भला कौन करेगा?

न ब्रह्मचारिणो दातुमधिकारोऽस्ति भामिनि।।19।।
गृहिभ्योऽन्यत्र सर्वेभ्यः को वा दास्यत्यपेक्षितम्।
नारण्यवासिनां शक्तिर्न ते सन्ति कलौ युगे।।20

हे भामिनि! ब्रह्मचारी को दान करने का अधिकार नहीं है। तब गृहस्थ को छोड़कर कौन सबको दान देगा? वन में रहनेवाले वानप्रस्थियों को तो इस कलियुग में दान करने की शक्ति ही नहीं है।

[2]परिव्राज्ज्ञानमात्रेण दानहोमादिभिर्विना।
सर्व्वदुःखपिशाचेभ्यो मुक्तो भवति नान्यथा।।21।।
परिव्राडविरक्तश्च विरक्तश्च गृही तथा।
कुम्भीपाके निमज्जेते[3] तावुभौ कमलानने।।22।।

संन्यासी तो केवल ज्ञान प्राप्त कर ही दान होम आदि के विना भी सभी दुःख रूपी पिशाच से मुक्त पा लेते हैं, दूसरे प्रकार से नहीं। यदि संन्यासी संसार में आसक्त हो और गृहस्थ के मन में वैराग्य हो, तो दोनों कुम्भीपाक नरक में जा डूबते हैं।

पुण्यस्त्रियो गृहस्थाश्च मङ्गलैर्मङ्गलार्थिनः[4]।।23।।
पूजोपकरणैः कुर्य्युर्दद्युर्दानानि चार्हणाम्।
चन्दनागरुकस्तूरीकर्प्पूरैश्चैव चम्पकैः।।24।।
पञ्चामृताभिषेकैश्च पुष्पैस्तामरसैरपि।
पुष्पमालैश्च बहुभिर्दूर्वाभिश्चाक्षतैः सह।।25।।
नीलोत्पलैर्मल्लिकैश्च करवीरैश्च चम्पकैः।
जातीप्रसूनैर्बिल्वैश्च पुन्नागैर्बकुलैरपि।।26।।
कदम्बैः केतकीपुष्पैः करुणाशोककिंशुकैः।
नागबाणादिपुष्पैश्च[5] गन्धवद्भिर्मनोहरैः।।27।।
प्रत्यग्रैः कोमलैश्चैव पूजयेयुः प्रयत्नतः।
पल्लवैश्चैव पत्रैश्च जलस्थलसमुद्भवैः।।28।।

1. घ. कः कुर्यात्तदनुग्रहम्। 2. घ. श्लोक सं. 21 अधिक है। 3. क. तु पच्येते।4. घ. मङ्गले! मङ्गलार्थिनः। 4. घ [illegible]।

कंकोलैलापूगफलैस्तथा जातीफलैरपि।
कर्पूरचूर्णसहितैस्ताम्बूलैश्च सुवासितैः।।34।।

कंकोल, इलायची, सुपारी, जायफल, कर्पूर के चूर्ण से सुगन्धित पान का बीड़ा समर्पित कर पूजा करें।

महार्हैरर्हणां चक्रुः कल्याणार्थं तथान्वहम्।
स्वस्वशक्त्यनुसारेण सर्वं सम्पाद्य यत्नतः।।35।।

कल्याण के लिए प्राचीन काल में सन्तों ने इन श्रेष्ठ वस्तुओं से अपनी शक्ति के अनुसार सब एकत्रित कर प्रतिदिन अर्चना की थी।

गृहस्थानां विधिरयं नैतरेषां शुभानने।
दद्युर्दानानि जुहुयुरर्चितेग्नौ सुखार्थिनः।।36।।

यह विधि केवल गृहस्थों के लिए है, अन्य के लिए नहीं। वे गृहस्थ सुख की कामना से दान करें और पूजित अग्नि में हवन भी करें।

कल्याणं च वरारोहे रामार्पणधियान्वहम्।

हे पार्वती! श्रीराम को समर्पित करने की बुद्धि से इस प्रकार अर्चना कर कल्याण होगा।

एवं गृहस्थनियमस्तथैव ब्रह्मचारिणाम्।।37।।
विधिमप्यनतिक्रम्य यथाशक्त्यनुसारतः।
यदि कुर्य्युः प्रयत्नेन पूजा तत्साधनैरिह[1]।।38।।
सर्वं सम्पद्यते तेषां देवानां दुर्लभं च यत्।

यह गृहस्थों के लिए नियम है, किन्तु इस प्रकार ब्रह्मचारी भी किसी विधान को छोड़े विना अपनी शक्ति के अनुसार यत्नपूर्वक यदि उन सामग्रियों से इस संसार में पूजा करते हैं, तो उनकी भी सभी कामनाओं की सिद्धि होती है, जो देवताओं के लिए भी दुर्लभ है।

कल्याणि शृणु मद्वाक्यं यदि कल्याणमिच्छसि।।39।।
राममाराधयाद्यादेर्यावज्जीवं यथाविधि।
एतेनैव वरारोहे कल्याणं तव सर्वदा।।40।।

1. घ. तत्साधनैरपि।

हे कल्याणम्यी पार्वती! यदि अपना कल्याण चाहती हो, तो मेरी बात सुनो और इन साधनों से विधानपूर्वक आज से लेकर जीवन पर्यन्त श्रीराम की आराधना करो। इसी से हमेशा तुम्हारा कल्याण होगा।

पुण्यस्त्रियो गृहस्थाश्च तथैव ब्रह्मचारिणः।
सगुणं राममाराध्य पूर्वोक्तैः साधनैरपि।।41।।
शक्त्या सम्पादितैः कैश्चित्पूजयेयुर्दिवानिशम्।
तेषां भुक्तिश्च मुक्तिश्च भवत्येव न चान्यथा।।42।।

पुण्य करनेवाली स्त्रियाँ, गृहस्थ पुरुष तथा ब्रह्मचारी शक्ति के अनुसार एकत्रित पूर्वोक्त सामग्रियों से भी सगुण राम की पूजा दिन-रात करें, तो उन्हें भोग और मोक्ष होगा ही, इसमें सन्देह नहीं।

वानप्रस्थाश्च यतयो यद्येवं कुर्य्युरन्वहम्।
संसारान्न निवर्तन्ते विध्यतिक्रमदोषतः।।43।।
आरूढपतिता ह्येते भवेयुर्दुःखभाजनाः।

वन में रहनेवाले तथा संन्यासी यदि उपर्युक्त विधान से प्रतिदिन पूजा करते हैं, तो उन्हें विधान का अतिक्रमण करने के दोष से संसार से मुक्ति नहीं मिलेगी और वे आरुढपतित कहलायेंगे और दुःख के भागी होंगें।

अहिंसा परमो धर्मस्तेषामेषा न पद्धतिः।।44।।
न हिंसाव्यतिरेकेण लभ्यन्ते तानि तानि वै।
भावनाकल्पितैः पूजासाधनैरेव युज्यते।।45।।

उनके लिए अहिंसा परम धर्म हैं और हिंसा के बिना ये सामग्रियाँ उपलब्ध नहीं हो सकतीं; यह पद्धति उनके लिए नहीं है। मन में पूजा-सामग्रियों की भावना कर उनके लिए मानस-पूजन विहित है।

न बहिर्योगयुक्तानां मनस्तेषां प्रशस्यते।
एतच्छान्तधियामेव सेव्यसेवकरूपतः।।46।।

किन्तु बहिर्योग से युक्त जो गृहस्थ और ब्रह्मचारी है, उनके लिए यह प्रशस्त है। यह शान्त बुद्धिवालों के लिए ही है, जो भगवान् को सेव्य और स्वयं को सेवक मानते हैं।

ध्यानमप्यर्च्चनाद् भद्रैर्भद्रार्थफलदं यतः।
आत्मनस्तत्त्वचिन्ता तु तस्याप्यात्मानुचिन्तनम्[1]।।47।।
उभयोरैक्यचिन्ता तु पुनरावर्तयेन्न तु।

सुन्दर साधनों से अर्चना करने से आत्मा के तत्त्व का चिन्तन और तत्त्वों की आत्मा का चिन्तन स्वरूप ध्यान श्रेष्ठ है, क्योंकि यह सुन्दर फल प्रदान करता है। साथ ही, आत्मा का तत्त्व और तत्त्व की आत्मा इन दोनों की एकता का चिन्तन करने से पुनर्जन्म नहीं होता है।

आत्मानं सततं रामं संभाव्य विहरन्ति ये।
न तेषां दुःकरं किंचिद् दुःकृतोत्था न चापदः।।48।।

जो हमेशा अपने को श्रीराम समझकर विहार करते हैं उनके लिए कोई दुष्कर कार्य नहीं है और उस दुष्कर कार्य के कारण उत्पन्न होनेवाली विपत्ति नहीं होती है।

इत्यगस्त्यसंहितायां परमरहस्ये सगुणोपासनम् नाम पंचमोऽध्यायः।।

अथ षष्ठोऽध्यायः

सुतीक्ष्ण उवाच

किमेतद् भगवन् ब्रूहि तव[2] मध्याङ्गुलिं रहः।
तत्किं पिबसि माहात्म्यं श्रीतुलस्याः क्वचित् सृतम्[3]।।1।।

सुतीक्ष्ण ने पूछा– हे भगवान् अगस्त्य मुनि! आपकी अंगुलियों के बीच में क्या छुपा हुआ है, यह तो बतलाइये! क्या आप श्रीतुलसी से निःसृत माहात्म्य का पान कर रहे हैं?

अगस्तिरुवाच

शृणु वक्ष्यामि माहात्म्यं श्रीतुलस्याः प्रयत्नतः।
पूर्वमुग्रतपः कृत्वा वरं बव्रे मनस्विनी।।2।।

1. घ. तस्यात्मनि विचिन्तयेत्। 2. ख. घ. हित्वा।3. ख. स्थितम्।

अगस्त्य बोले– सुनो, मैं श्रीतुलसी का माहात्म्य भली-भाँति कहता हूँ। प्राचीन काल में मनस्विनी तुलसी ने उग्र तपस्या कर भगवान् से वर माँगा।

तुलसी सर्वपुष्पेभ्यो पत्रेभ्यो वल्लभा यतः[1]।

विष्णोस्त्रैलोक्यनाथस्य रामस्य जनकात्मजा।।3।।

प्रिया तथैव तुलसी सर्वलोकैकपावनी।

जैसे श्रीराम के लिए जनकनन्दिनी श्रीसीता प्रिय हैं उसी प्रकार सभी फूलों और पत्तियों में तुलसी भगवान् विष्णु को सबसे प्रिय हो और वह सभी लोकों को पवित्र करती रहे।

तुलसीपत्रमात्रेण योऽर्चयेद्राममन्वहम्[2]।।4।।

स याति शाश्वतं ब्रह्म पुनरावृत्तिदुर्लभम्।

अतः केवल तुलसी के पत्र से जो प्रतिदिन श्रीराम की पूजा करते हैं वे ऐसे शाश्वत ब्रह्मलोक को प्राप करके हैं, जहाँ से फिर इस संसार में आना सम्भव नहीं है।

नीलोत्पलसहस्रेण त्रिसन्ध्यं योऽर्चयेद्धरिम्।।5।।

फलं वर्षसहस्रेण[3] तदीयं नैव लभ्यते।

नीलकमल के हजार फूलों से तीनों सन्ध्या जो श्रीहरि की पूजा करते हैं, वे एक हजार वर्ष में भी वैसा फल प्राप्त नहीं कर पाते हैं।

विद्वन् सर्वेषु पुष्पेषु पङ्कजं श्रेष्ठमुच्यते।।6।।

तत्पुष्पेष्वपि तन्माल्यं लक्षकोटिगुणं भवेत्।

हे विद्वान् सुतीक्ष्ण! सभी फूलों में कमल श्रेष्ठ है और कमल के फूलों में भी उसकी माला लाखों करोड़ों गुना फलदायिनी होती है।

विष्णोः शिरसि विन्यस्तमेकं श्रीतुलसीदलम्।।7।।

अनन्तफलदं विद्वन् मन्त्रोच्चारणपूर्वकम्।

किन्तु भगवान् विष्णु के शिर पर मन्त्रोच्चारण के साथ चढ़ाया गया एक तुलसी का पत्र अनन्त फल देता है।

---

1. घ. तत। 2. घ. ०विष्णुमन्वहम्।3. घ. वर्षशतेनापि।

पुष्पान्तरैरन्तरितं निर्म्मितं तुलसीदलैः।।8।।

माल्यं मलयजालिप्तं दद्यात् श्रीराममूर्द्धनि।

दूसरे फूलों के बीच में तुलसीदल डालकर बनायी गयी तथा मलय चन्दन से पोती गयी माला श्रीराम के मस्तक पर चढ़ानी चाहिए।

किं तस्य बहुभिर्यज्ञैः सम्पूर्णवरदक्षिणैः।।9।।

किं तीर्थसेवया दानैरुग्रेण तपसापि वा।

उनके लिए अनेक श्रेष्ठ दक्षिणा वाला यज्ञ, तीर्थ में निवास, दान तथा उग्र तपस्या व्यर्थ है।

वाचं नियम्य चात्मानं मनो विष्णौ निधाय च।।10।।

योऽर्चयेत् तुलसीमालैर्यज्ञकोटिफलं भवेत्।

भवाघकूपमग्नानामेतदुद्धारकाङ्कुशम्[1] ।।11।।

अपनी वाणी को संयमित कर तथा मन में भगवान् विष्णु को धारण कर जो तुलसी की माला से पूजा करते हैं उन्हें करोड़ों यज्ञ करने का फल मिलता है। यह संसार के पाप रूपी कूप में गिरे लोगों को निकालने के लिए झग्गर है।

पत्रं पुष्पं फलं चैव श्रीतुलस्याः समर्पितम्।

रामाय मुक्तिमार्गस्य द्योतकं सर्वसिद्धिदम्।।12।।

श्रीराम को समर्पित श्रीतुलसी का पत्र, फूल तथा फल सभी सिद्धियाँ प्रदान करते हैं और मुक्ति का मार्ग प्रकाशित करते हैं।

माल्यानि तनुते लक्ष्मीः कुसुमान्तरितानि ह।

तुलस्याः स्वयमानीय निर्मितानि तपोधन।।13।।

हे तपोधन सुतीक्ष्ण! अपने से तोड़कर लाये गये तुलसी के पत्र को फूलों से ढँककर बनायी गयी माला अर्पित से लक्ष्मी की वृद्धि होती है।

[2]त्रयो वेदास्त्रयो देवास्तिस्रः सन्ध्यास्त्रयोऽग्नयः।

सदा कुर्वन्ति माङ्गल्यं तुलसी यस्य मस्तके।।14।।

जो मस्तक पर तुलसी धारण करते हैं उनका कल्याण तीनों वेद, तीनों देव, तीनों सन्ध्याएँ और तीनों अग्नियाँ करती हैं।

---

1. घ. ⁰मेतदुद्धारकारणं। 2. घ. दो पंक्तियाँ अनुपलब्ध।

तुलसीवाटिका यत्र पुष्पान्तरशतैर्युता।
शोभते राघवस्तत्र सीतया सहितः स्वयम्।।15।।

जहाँ सैकड़ों प्रकार के फूलों से युक्त तुलसी का बाग है, वहाँ स्वयं श्रीराम सीता के साथ विराजमान रहते हैं।

कौतुकं श्रृणु देवेशि विनिर्माल्ये च वह्निना।
तापिते नाशमायाति ब्रह्महत्यादिपातकम्।।16।।

हे देवेशि! यह आश्चर्य की बात सुनो कि निर्माल्य से तुलसीदल चुनकर जो अग्नि में जलाते हैं, इससे ब्रह्महत्या आदि के पापों का नाश होता है।

आरोपयन्ति ये नित्यं स्वयमेव मनीषिणः।
वनत्वेन समावृत्य कण्टकैस्तुलसीतरून्।।17।।
अर्चनाय तदेवालं तन्नामाभ्यर्हितं ततः।

जो विद्वान् व्यक्ति नियमित रूप से स्वयं (रक्षा के लिए) काँटों की बाड़ से घेरकर तुलसी-वन लगाते हैं, वही पूजा-अर्चना के लिए पर्याप्त है; उससे भी श्रेष्ठ उनके नाम से युक्त तुलसी की प्रशंसा की गयी है।

शालग्रामशिलातीर्थं[1] तुलसीदलवासितम्।।18।।
ये पिबन्ति पुनस्तेषां स्तन्यपानं न विद्यते।

शालग्राम शिला का जल जो तुलसीदल से सुवासित है, उसका पान करनेवालों को पुनः स्तनपान नहीं करना पड़ता अर्थात् उनका पुनर्जन्म नहीं होता।

गाङ्गेयमिव तोयेषु पूज्येष्विव रघूत्तमः।।19।।
सरोजमिव पुष्पेषु शस्यते तुलसीदलम्।

जलों में गंगाजल, पूजनीय देवों में श्रीराम और फूलों में कमल के समान पत्रों में तुलसीदल प्रशस्त है।

सम्पूज्य भक्त्या विधिवद्रामं श्रीतुलसीदलैः।।20।।
भवान्तरसहस्रेषु दुःखग्राहाद् विमुच्यते।

तुलसीदल से श्रीराम की भक्ति और विधान से पूजा कर मनुष्य हजार जन्मों तक दुःखरूपी ग्राह से मुक्त हो जाता है।

1. घ. शालग्रामशिलातोयं।

वर्णाश्रमेतराणां च पूजा यस्यैव साधनम्।।21।।

अपेक्षितार्थदं नान्यज्जगत्स्वपि तपोधन।

वर्णाश्रम धर्म से बहिर्भूत और केवल पूजा को ही मोक्ष का साधन बनानेवाले अर्थात् (दान आदि के अनधिकारी) यतियों के लिए संसार में तुलसीदल को छोड़कर कोई दूसरी वस्तु नहीं है, जिससे उन्हें इच्छित वस्तु की प्राप्ति हो सके।

पूजायोग्यैर्दलैः पत्रैः पुष्पैर्योऽर्चयेद्धरिम्।।22।।

यान्ति[1] न्यूनातिरिक्तानि कर्माणि सफलान्यहो।

न तस्य नरकक्लेशो योऽर्चयेत् तुलसीदलैः।।23।।

पापिष्ठो वाप्यपापिष्ठो सत्यं सत्यं न संशयः।

पूजा के योग्य दल, पत्र और पुष्प से जो श्रीहरि की पूजा करते हैं उनके द्वारा पूजा-सामग्री में कमी या फालतू सामग्री के रहने पर भी कर्म सफल होते हैं। जो तुलसीदल से पूजा करते हैं, उन्हें नरक का क्लेश नहीं होता, चाहे वे पापी हो या निष्पाप हो; यह सत्य है, सत्य है, इसमें सन्देह नहीं।

गङ्गातोयेन तुलसीदलयुक्तेन योऽर्चयेत्।

रामं निक्षिप्य शिरसि राममन्त्रेण सेचयेत्।।24।।

निमील्य चक्षुषी धीरो हृदि रामं निधाय च।

असकृद् वा सकृद् वापि य एवमनुतिष्ठति।

ध्येयो भवति सर्वेषामयमेव विमुक्तये।।25।।

तुलसीदल से युक्त गंगाजल से श्रीराम की पूजा करते हैं, उसे अपने शिर पर धारण कर श्रीराम के मन्त्र से अभिषेक करते हैं, आँखों को धैर्यपूर्वक बंद कर हृदय में श्रीराम को धारण करते हैं; ऐसा अनेक बार या एक बार भी अनुष्ठान करते हैं, तो उनके ध्येय श्रीराम इसी से मोक्ष प्रदान करते हैं।

न सन्ति गुरवो यस्य नैव दीक्षाविधिः क्रमः।

रामरक्षां वदन्तो यः तुलसीदलमर्पयेत्।।26।।

दीक्षान्तरशतेनापि नैतत्फलमवाप्यते।

---

1. घ. तानि।

जिनके कोई गुरु नहीं हैं, अथवा जिन्होंने दीक्षा भी नहीं ली है, न ही पूजा की विधि एवं क्रम जानते हैं, वे भी यदि रामरक्षा-स्तोत्र का पाठ करते हुए तुलसीदल अर्पित करते हैं, तो अन्य प्रकार की हजारों दीक्षा से भी ऐसा फल उन्हें नहीं मिलेगा।

दीक्षितेष्वपि सर्वेषु रामदीक्षा तु उत्तमः।।27।।

न गुरुर्नैव कालश्च न देवान्तरपूजनम्[1]।

तुलसीदलयुक्तं च रामार्चनमपेक्षते।।28।।

सभी प्रकार के दीक्षितों में श्रीराम की दीक्षा उत्तम है। इसके लिए न गुरु न समय और न अन्य देवताओं की पूजा की अपेक्षा है केवल तुलसीदल से श्रीराम की पूजा करनी चाहिए।

निर्माल्यतुलसीमालायुक्तो यद्यर्चयेद्धरिम्।

यद्यत्करोति तत्सर्वमनन्तफलदं भवेत्।।29।।

यदि कोई भगवान् को समर्पित निर्माल्य तुलसीदल को धारण कर श्रीहरि की अर्चना करता है, तो वह जो जो कार्य कारेगा उसे अनन्त फल मिलेगा।

यदि न्यूनं भवत्येव रामाराधनसाधनम्।

तुलसीपत्रमात्रेण युक्तं तत्परिपूर्यते।।30।।

यदि श्रीराम की पूजा-सामग्री में किसी वस्तु की कमी रहे, तो केवल तुलसीदल डाल देने से पूर्ण हो जाता है।

शालग्रामशिलायाश्च गङ्गायाश्च तपोधन।

तुलस्याश्चैव माहात्म्यं नेष्टो वक्तुं हि विश्वसृक्।।31।।

हे तपोधन सुतीक्ष्ण! शालग्राम की शिला, गंगा और तुलसी का माहात्म्य कहने में विश्व के निर्माता ब्रह्मा भी असमर्थ हैं।

भवभञ्जनमेतत्ते सर्वाभीष्टं प्रयच्छति।

नातः परतरं किञ्चित् पावनं विद्यते भुवि।।32।।

तुलसीदल पुनर्जन्म का नाश करनेवाला है तथा सभी कामनाओं की पूर्ति करता है। संसार में इससे बढ़कर पवित्र दूसरा कुछ भी नहीं है।

यः कुर्य्यात् तुलसीकाष्ठैरक्षमालास्वरूपिणीम्।

कर्णमालां प्रयत्नेन कृतं तस्याक्षयं भवेत्।।33।।

---

1. घ. देवान्तरसेवनम्।

जो तुलसी लकड़ी से रुद्राक्ष की तरह माला बनाकर कानों में धारण करते हैं, उनके द्वारा किये गये कार्य कभी नष्ट नहीं होते।

संघृष्य तुलसीकाष्ठं यो दद्याद्राममूर्द्धनि।
कर्पूरागुरुकस्तूरीचन्दनं च न तत्समम्।।34।।

तुलसी की लकड़ी को घिसकर श्रीराम के मस्तक पर लगावें। यह कर्पूर, अगुरु, कस्तूरी और चन्दन भी इसके समान नही है।

तुलसीविपिनस्यापि समन्तात्पावनं स्थलम्।
क्रोशमात्रं भवत्येव गाङ्गेयस्येव पावनम्।।35।।

तुलसी-वन के चारों ओर की भूमि भी पवित्र होती है, जैसे गंगा के तट पर एक कोस तक की भूमि पवित्र होती है।

तुलस्या रोपिता सिक्ता दृष्टा स्पृष्टा तु पावयेत्।
आराधिता प्रयत्नेन सर्वकामफलप्रदा।।36।।

तुलसी का वृक्ष रोपने से, सींचने से, दर्शन करने से स्पर्श करने से पवित्र कर देता है और यत्नपूर्वक उसकी आराधना करने से सभी कामनाओं की पूर्ति होती है।

चतुर्णामपि वर्णानामाश्रमाणां विशेषतः।
स्त्रीणां च पुरुषाणां च पूजितेष्टं ददाति हि।।37।।

चारो वर्णों एवं आश्रमों के स्त्रियों एवं पुरुषों के द्वारा पूजित तुलसी इच्छाओं की पूर्ति करती है।

प्रदक्षिणं भ्रमित्वा तु नमस्कुर्वन्ति नित्यशः।
न तेषां दुरितं किञ्चित् प्रक्षीणमवशिष्यते।।38।।

जो तुलसी वृक्ष के दाहिने से घूमकर प्रतिदिन प्रणाम करते हैं उनके द्वारा किये गये पाप कम होकर भी नहीं रहता अर्थात् समूल समाप्त हो जाता है।

अनन्यदर्शनाः प्रातर्ये पश्यन्ति तपोधन।
अहोरात्रकृतं पापं तत्क्षणात् प्रदहन्ति ते।।39।।

प्रातःकाल किसी दूसरी वस्तु को देखे विना जो तुलसी का दर्शन करते हैं, उनके द्वारा उस दिन और रात में किये गये पाप भस्मीभूत हो जाते हैं।

तुलसी सन्निधौ प्राणान् ये त्यजन्ति मुनीश्वर।
न तेषां नरकक्लेशः प्रयान्ति परमां गतिम्[1]।।40।।

हे मुनिश्रेष्ठ! तुलसी के समीप जो प्राण छोड़ते हैं, उन्हें नरक का क्लेश नहीं होता और वे परम गति को प्राप्त करते हैं।

विधेयमविधेयं वा न्यूनमप्यथवाधिकम्।
तुलसीदलमादाय रामं ध्यात्वा समर्पयेत्।।41।।

पूजन में जहाँ विधान हो या न हो, अन्य सामग्रियों में न्यूनता या अतिरिक्तता हो, श्रीराम का ध्यान कर तुलसीदल समर्पित करें।

'रामाय नम' इत्येतदच्युताय नमस्ततः।
अनन्ताय नमस्तस्मात् प्रणवादि वदेदिदम्।।42।।
कृतं सफलतामेति तुलसीसन्निधौ मुने।

पहले 'रामाय नमः' ऐसा कहें; फिर 'अच्युताय नमः' ऐसा कहें, फिर 'अनन्ताय नमः' कहें। इसके बाद प्रणव ॐकार आदि का उच्चारण करें। तुलसी वृक्ष के निकट पूजा आदि कर्म करने से सफलता मिलती है।

तदेव पुण्यकालेषु सहस्रगुणितं भवेत्।।43।।
शालग्रामशिलायाश्च तुलसीसन्निधौ मुने।
तेषां पुण्यवतां मृत्युस्ते मुक्ता नात्र संशयः।।44।।

यही कर्म शुभ समय में किया जाये, तो हजार गुणा फल मिलता है। तुलसी तथा शालग्राम की शिला के निकट जिस पुण्यवान् व्यक्ति की मृत्यु होती है, वे मुक्त हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं।

इत्यगस्त्यसंहितायाम् परमरहस्ये श्रीतुलसीमाहात्म्यकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः।।6।।

अथ सप्तमोऽध्यायः

अगस्त्य वद त्वं श्रेष्ठ रामस्य मुनिसत्तम।
मन्त्रराजस्य माहात्म्यं यदुक्तं ब्रह्मणा पुरा।।1।।

सुतीक्ष्ण बोले- हे श्रेष्ठ महामुनि अगस्त्य! श्रीराम के मन्त्रराज का माहात्म्य जो प्राचीन काल में ब्रह्माजी ने कहा था, वह सुनाइए।

1. घ. परमं पदम्।

अगस्त्य उवाच

सर्वं तवाभिधास्यामि पुरारेः पुरतः पुरा।
ब्रह्मा यदब्रवीत् तत् त्वं शृणुष्वावहितो महत्।।2।।

अगस्त्य बोले- प्राचीन काल में ब्रह्माजी ने भगवान् शंकर के समक्ष जो कुछ कहा था, वह सब माहात्म्य सुनाऊँगा, उसे ध्यान से सुनो।

अस्ति वाराणसी नाम पुरी शिवमनोहरा।
सर्वदासौ शिवस्तत्र पार्वत्या सह तिष्ठति।।3।।

वाराणसी नाम की वह नगरी है, जो भगवान् शिव के वास करने से मन मोह लेती है। वहाँ भगवान् शिव हमेशा पार्वती के साथ वास करते हैं।

तस्याप्युपासकाः सर्वे भक्त्या तं प्रतिपेदिरे।
मुमुक्षवः परित्यज्य सर्वं तत्रैव संस्थिताः।।4।।
सदा शिव शिवेत्येवं वदन्तः शिवतत्पराः।
शिवार्पितमनःकायवाचः शिवपरायणाः।।5।।

भगवान् शिव की आराधना करनेवाले सभी भक्ति-भाव से अनुगमन करने लगे। उस प्रकार मोक्ष की इच्छा करनेवाले सभी अन्य स्थलों को छोड़कर वाराणसी में ही हमेशा 'शिव! शिव' का उच्चारण करते हुए, शिव मे मन, शरीर एवं वाणी को अर्पित कर शिवभक्त होकर रहने लगे।

शिवस्तु तान् मुहुः पश्यन्नास्ते चिन्तासमाकुलः।
कथमेभ्यः प्रदास्यामि मुक्तिमित्यतिदुःखितः।।6।।
तत्रैवास्ते गणैः सार्द्धमृषिभिश्च सुरासुरैः।

भगवान् शिव उन्हें बार-बार देखते हुए चिन्तित हो गये कि इन्हें मुक्ति किस प्रकार दूँगा। इस प्रकार वे अत्यधिक दुःखी थे। फिर भी भगवान् शिव सभी गण, ऋषि, देवता एवं असुरों के साथ वहीं रहे।

एवं वसति भूर्ल्लोकमाजगाम चतुर्मुखः।।7।।
तमीश्वरो निरीक्ष्यैव सम्भ्रमेणाकरोत् प्रियम्।
बहु संभावयामास यद्धितं तन्न्यवेदयत्।।8।।

इस प्रकार जब शिव वहाँ रहे थे, तब एक दिन ब्रह्मा पृथ्वी पर आये। उन्हें देखकर भगवान् शिव ने उत्साह से उन्हें प्रसन्न किया और अनेक प्रकार से अभ्यर्थना कर अपना अभीष्ट निवेदित किया।

ततः स प्राह भगवानीश्वरस्तं चतुर्म्मुखम्।
कुशलं ननु ते ब्रह्मन् चिराय त्वमिहागतः।।9।।
श्रीमदागमनेनाहं लोकपूज्योऽप्युपासकैः।
समाराध्य हि मां भक्तिं प्रार्थयन्ति मुमुक्षवः।।10।।
केनोपायेन तेषां तत्फलं दास्यामि तद् वद।

इसके बाद भगवान् शिव ने ब्रह्मा से कहा- 'हे ब्रह्मा, आप कुशल तो हैं न! बहुत दिनों के बाद यहाँ आये हैं! श्रीमान् के आगमन से आज मैं उपासकों के साथ तीनों लोकों में पूज्य हूँ। मोक्ष चाहनेवाले मेरी आराधना कर भक्ति की प्रार्थना करते हैं, अतः उस भक्ति का फल मोक्ष उन्हें किस प्रकार दूँ, यह बतलाइए।

ईश्वरेणैवमुक्तः सन् द्रुहिणोऽपि बभाण ह।।11।।
अस्त्युपायो गोपनीयः प्रादाद् यं मे रघूद्वहः।
तपः कृत्वा चिरायाहं तं परं लब्धवान् वरम्।।12।।
ततोऽन्यो मदभिज्ञातो नास्त्युपायो महेश्वर।
मह्यमन्वग्रहीद् रामो न सन्देहोऽस्ति तत्र वै।।13।।

भगवान् शंकर के ऐसा कहने पर ब्रह्मा भी बोले- "एक ऐसा उपाय है, जो सभी को बतलाया नहीं जा सकता। यह मुझे स्वयं श्रीराम ने बतलाया था, जब मैंने चिरकाल तक तपस्या कर उनसे वर प्राप्त किया था। हे महेश्वर! इससे भिन्न उपाय मेरी जानकारी में नहीं है। मेरे ऊपर श्रीराम ने कृपा की थी, इसमें सन्देह नहीं।

ईश्वर उवाच

अथ किं मे वदस्वेदं त्वं मां यद्यनुकम्पसे।
स तेनाभिहितो दध्यौ क्व कदा युक्तमित्यपि।।14।।

ईश्वर (शिव) बोले- "यदि मेरे ऊपर कृपा हो तो बतलाइए कि ऐसा कौन-सा उपाय है।" ऐसा कहने पर ब्रह्मा ने सबका बखान किया कि यह मन्त्र कहाँ और किस समय देना चाहिए।

पुण्यतीर्थे च गंगायां लोलार्के सूर्यपर्वणि।
तस्मै मन्त्रवरं प्रादान्मन्त्रराजं षडक्षरम्।।15।।

गंगा के पावन तट पर सूर्यग्रहण के समय जब सूर्य चंचल रहते हैं ऐसे स्थान और समय में ब्रह्मा ने शिव को यह षडक्षर मन्त्र दिया।

नियतः सोऽपि तत्रैव जजाप वृषभध्वजः।
मन्वन्तरशतं भक्त्या ध्यानहोमार्चनादिभिः।।16।।

वृषभध्वज शिव ने भी वहीं नियमपूर्वक भक्तिभाव से ध्यान, होम और अर्चना करते हुए सौ मन्वन्तर तक मन्त्र का जप किया।

ततः प्रसन्नो भगवान् रामः प्राह त्रिलोचनम्।
वृणीष्व पदमिष्टं[1] ते देवानामपि दुर्ल्लभम्।।17।।
तदेवाहं प्रदास्यामि मा चिरं वृषभध्वज।

इसके बाद प्रसन्न होकर भगवान् श्रीराम ने भगवान् शंकर से कहा- "हे वृषभध्वज! आप जो स्थान चाहें वह माँग लें। देवताओं के लिए भी जो दुर्लभ है, वही मैं दूँगा! देर न करें।"

ततस्तमब्रवीद् विष्णुमीश्वरः परया मुदा।।18।।
दर्शनेनैव ते धन्याः कृतार्थाः वै ममेप्सितम्।
एते मदीयाः सर्वेऽपि मां परं पर्य्युपासते।।19।।
मुक्त्यर्थं तत्कुरुष्वैषां तदेवाभिमतं मम।।
नातः परतरं किञ्चित् प्रार्थितं मम विद्यते।।20।।

इसके बाद परम प्रसन्न होकर भगवान् शिव ने विष्णु से कहा- "आपके दर्शन से ही हम धन्य हो गये; मेरी इच्छा सफल हो गयी। किन्तु मेरे ये भक्त जो मुझे परम देव मानकर मेरी उपासना करते हैं, इनकी मुक्ति के लिए उपाय करें; यही मेरी इच्छा है। इससे बढ़कर मेरी कोई प्रार्थना नहीं है।

एवं वदति तत्रैव तदानीं तदुपासकाः।
सर्वे ज्योतिर्मयाः सन्तो विष्णावेव लयं गताः।।21।।

ऐसा कहने पर उस समय वहीं पर भगवान् शिव के सभी उपासक ज्योतिःस्वरूप होकर विष्णु में ही लीन हो गये।

---

1. ख. यदभीष्टं।

ततः प्रोवाच रामस्तं पुनरिष्टं यदस्ति ते।
ब्रूहीश्वरात्र तद् दास्ये प्रार्थनादुर्लभं च यत्।।22।।

इसके बाद श्रीरामं ने शिव से कहा- "हे ईश्वर! यदि और भी कोई आपकी इच्छा हो तो यहाँ कहें। प्रार्थना के द्वारा जो दुर्लभ है वह में दूँगा।"

इत्युक्तः स पुनर्बव्रे हितं तद् भक्तवत्सलः।
सर्वलोकोपकाराय सर्वेषामपि दुर्ल्लभम्।।23।।
ये स्वतो वान्यतो वापि यत्र कुत्रापि वा प्रभो।
प्राणान् परित्यजन्त्यत्र मुक्तिस्तेषां फलं भवेत्।।24।।

विष्णु के द्वारा ऐसा कहने पर भक्तवत्सल भगवान् शिव ने पुनः सबके लिए दुर्लभ और सबके उपकार के लिए कहा- "हे प्रभो! जो स्वाभाविक रूप से या अस्वाभाविक रूप से जिस किसी स्थान में प्राणत्याग करते हैं, उनकी मुक्ति हो।"

गंगायां च तटे वापि यत्र कुत्रापि वा पुनः।
म्रियन्ते ये प्रभो देव मुक्तिर्नातो वरान्तरम्।।25।।

गंगा में या इसके तट पर जहाँ कहीं भी लोगों की मृत्यु हो, वे मुक्ति पायें उसके अतिरिक्त कोई वर नहीं चाहिए।

विश्वामित्र्यां च यः स्नात्वा पश्येत् सिद्धेश्वरं सकृत्।[1]
ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः।।26।।
विश्वामित्र्यां च ये नूनं स्नाति श्रद्धालवः सदा।
तेऽपि पापविनिर्मुक्ता यान्ति विष्णोः[2] परंपदम्।।27।।

विश्वामित्र की नदी (कोशी?) में स्नान कर जो सिद्धेश्वर का एकबार भी दर्शन करते हैं, वे ब्रह्महत्या आदि पापों से मुक्त हो जाते हैं इसमें सन्देह नहीं। कौशिकी नदी में जो हमेशा केवल श्रद्धापूर्वक स्नान करते हैं, वे भी पाप से मुक्त होकर विष्णु का परम पद प्राप्त करते हैं।

श्रीराम उवाच

कुरुते मानवो यस्तु कलौ भक्तिपरायणः।
कल्पकोटिसहस्त्राणि रमते सन्निधौ हरेः।।28।।

श्रीराम बोले- कलियुग में जो मनुष्य भक्तिपूर्वक कर्म करते हैं, वे हजारों करोड़ कल्प तक श्रीहरि के समीप रमण करते हैं।

---

1. क. कृती।2. ख. शम्भोः।

क्षेत्रे तु तव देवेश यत्र कुत्रापि वा मृताः।
कृमिकीटादयोऽप्याशु मुक्ताः सन्तु न चान्यथा।।29।।

हे देवेश! आपके क्षेत्र में जहाँ कहीं भी मृत्यु पाकर कृमि, कीट आदि भी शीघ्र ही मुक्त हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं।

त्वत्तो वा ब्रह्मणो वापि लभन्ते ये षडक्षरम्।
जीवन्तो मन्त्रसिद्धाः स्युर्मृता मां प्राप्नुवन्ति ते।।30।।

आपसे या ब्रह्मा से जो षडक्षर मन्त्र पाते हैं, वे जीवित रहते मन्त्रसिद्ध हो जाते हैं और मृत्यु के बाद मुझे प्राप्त करते हैं।

क्षेत्रेऽस्मिन् योऽर्चयेद् भक्त्या मन्त्रेणानेन शंकर।
अहं सन्निहितस्तत्र पाषाणप्रतिमादिषु।।31।।

हे शंकर! इस क्षेत्र में इस मन्त्र से भक्तिपूर्वक जो मेरी अर्चना करते हैं, मैं उनके समीप रहता हूँ; क्योंकि यहाँ पत्थर आदि की प्रतिमाओं में लीन मैं हूँ।

मुमूर्षोर्दक्षिणे कर्णे यस्य कस्यापि वा स्वयम्।
उपदेक्ष्यति मन्मन्त्रं स मुक्तो भविता शिव।।32।।

हे शिव! जिसकी मृत्यु निकट हो, वैसे किसी के दाहिने कान में दूसरा कोई मेरा मन्त्र कहे या वह स्वयं जपे वह मुक्ति पायेगा।

इत्युक्तवति देवेशे पुनरप्याह शंकरः।
महान् महाभिमानोऽत्र क्षेत्रे त्रैलोक्यदुर्ल्लभे।।33।।
फलं भवतु देवेश सर्वेषां मुक्तिलक्षणम्।
मुमूर्षूणां च सर्वेषां दास्ये मन्त्रवरं परम्।।34।।

श्रीराम के ऐसा कहने पर पुनः शंकर ने कहा- "यह इस क्षेत्र की बड़ी महिमा होगी, जो तीनों लोको में दुर्लभ है। हे देवेश! सबको मुक्तिस्वरूप फल मिले। जिनकी मृत्यु निकट है, ऐसे सब लोगों को मैं यह मन्त्रराज प्रदान करूँगा।

इत्येवमीरितो विष्णुस्तस्मै दत्वा वरान्तरम्।
यदभीष्टं पुनस्तत्र तत्रैवान्तरधीयत।।35।।

इस प्रकार कहने पर विष्णु ने उन्हें अन्य इच्छित वर देकर फिर वहीं अन्तर्धान हो गये।